CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाभारत का काव्यार्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस व्याख्यानमाला के अन्य
प्रकाशित ग्रन्थ

- भारतीय परम्परा के मूल स्वर
  डॉ० गोविन्द चन्द्र पांडे
- भारतीय संस्कृति : पुरातात्त्विक आधार
  डॉ० गोविन्द राय शर्मा

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हीरानन्द शास्त्री स्मारक
व्याख्यानमाला-४

महाभारत का काव्यार्थ

विद्यानिवास मिश्र

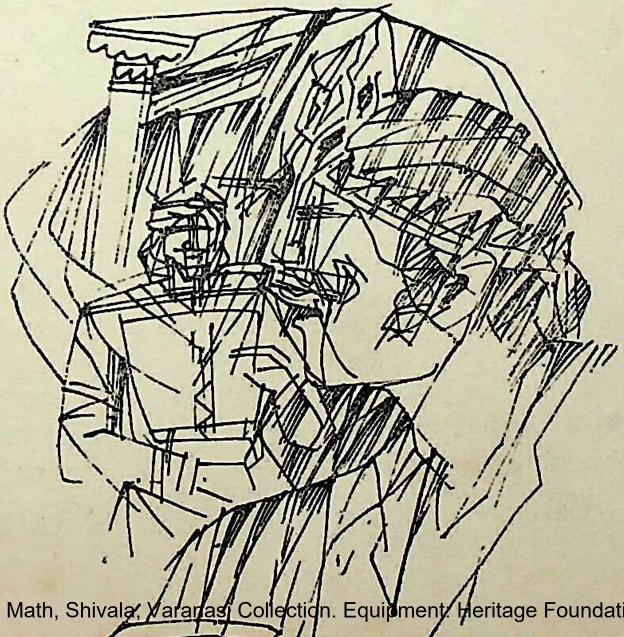

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं :
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : ४२.००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित/ सर्वाधिकार : वत्सल निधि, नयी दिल्ली / प्रथम संस्करण : १९८५ / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, ए-९५, सेक्टर-५, नोएडा-२०१३०१ में मुद्रित। [229.1-12-785/N]

MAHABHARATA KA KAVYARTHA (Essays) by Vidya Niwas Mishra
Price : Rs. 42.00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूज्य ब्रह्मलीन स्वामी करपात्री जी

की

पुण्य स्मृति को सादर समर्पित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवेदन

वत्सल निधि द्वारा आयोजित डॉ० हीरानन्द शास्त्री स्मारक व्याख्यानमाला की पाँचवीं लड़ी के रूप में 'महाभारत का काव्यार्थं' विषय पर तीन व्याख्यान देना स्वीकार करके डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने स्वयं तो न्यास को मान दिया ही, जिस सहृदय श्रोता-मंडली ने वे व्याख्यान सुने उनके साधुवाद का लक्ष्य भी बनाया। सभी की हार्दिक इच्छा थी कि ये व्याख्यान मुद्रित रूप में शीघ्र उपलब्ध कराये जायें; विद्वान वक्ता के सहयोग से यह सम्भव हो पाया है इस का वत्सल निधि को बड़ा सन्तोष है।

न्यास की ओर से वक्ता को जो मानदेय दिया जाता है वह तो विद्यानिवास जी ने वापस न्यास को उसके कार्यों के लिए दिया ही; इस पुस्तक की लेखक के प्राप्यांश के रूप में उन्हें जो आय होती वह भी उन्होंने वत्सल निधि के स्थायी कोष के लिए अर्पित कर दी है। विद्यानिवास जी मेरे लिए तो भाई सरीखें हैं, वत्सल निधि के भी वह एक न्यासधारी हैं; उन के आभार का उल्लेख करते भी संकोच होता है। पर न्यास के उद्देश्यों को उन का यह समर्थन भविष्य में अनेक रूपों में फलेगा, यह विश्वास हम सब को बल देता है।

—सच्चिदानन्द वात्स्यायन

विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी - 1
फोन : (O) 353741, 353082, (R) 332566
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आभार

'महाभारत का काव्यार्थ' लिख गया, या लिखा लिया गया, इसका श्रेय महाभारतकार कृष्णद्वैपायन को और महाभारत के टीकाकारों को (विशेष रूप से श्री मन्मध्वाचार्य, सदानन्द यति और नीलकंठ दीक्षित को) है; और दूसरे ब्रह्मलीन स्वामी करपात्री जी तथा स्वामी अखण्डानन्द जी जैसे परम्परागत मनीषियों एवं स्व० सुखथणकर और स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे आधुनिक विद्वानों को है। इन सब का ऋणी हूँ। आदरणीय भाई (वात्स्यायनजी) की प्रेरणा और इसके लिए निरन्तर उकसाव के बिना (और बिना उनके घर में अवरुद्ध हुए !) तो यह लिखा नहीं जा सकता था। उनके प्रति आभार क्या व्यक्त करूँ, उन्हीं की वस्तु उन्हीं को अर्पित है।

परिशिष्ट तैयार करने में डॉ० शशि तिवारी, डॉ० अर्चना चतुर्वेदी और श्री वृषभप्रसाद जैन ने सहायता की है; इन्हें स्नेहाशीष देता हूँ। छपने देने के पूर्व पूज्य भैयासाहब (पं० श्री नारायण चतुर्वेदी) को मैंने व्याख्यानों के मुख्य अंश सुनाये थे; उन्होंने बहुत आशीर्वाद दिया था। तीन दिनों तक दिल्ली के प्रबुद्ध श्रोता इसे स्नेहपूर्वक सुनते रहे। उनका मैं बहुत आभारी हूँ। इला बहन ने व्याख्यान का आयोजन एक मांगलिक अनुष्ठान के रूप में बहुत ही मनोयोग से किया, उन्हें भी असीसता हूँ।

—विद्यानिवास मिश्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

निवेदन ... ७

आभार ... ९

भूमिका ... १३

● पहला अध्याय

'सत्यं चाऽमृतं च'
महाभारत का सत्य ... २३

● दूसरा अध्याय

'न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि'
महाभारत की पीड़ा ... ४१

● तीसरा अध्याय

'सर्वभूतेषु येनेकं भावमव्ययमीक्षते'
महाभारत का अव्यय भाव ... ५९

परिशिष्ट

१. महाभारत काव्य-चयन ... ७९

२. महाभारत के आख्यान, उपाख्यान और इतिहास (कथा-निदर्शन) ... १०८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमिका

भारतीय साहित्य में महाभारत एक बहुचर्चित ग्रन्थ है। उसे समस्त भारतीय साहित्य का स्रोत ग्रन्थ भी माना जाता है। केवल इस अर्थ में स्रोत ग्रन्थ नहीं कि उसकी मुख्य कथा और छोटी कथाओं के आधार पर समस्त भारतीय भाषाओं में काव्य, नाटक, चम्पू लिखे गये हैं बल्कि इस अर्थ में भी कि महाभारत में प्रस्तुत मानव-स्वरूप भारतीय मन पर छाया हुआ है और जब कभी भी अन्धकार के क्षण में किसी रचनाकार को राह नहीं दिखती है, तो उसे महाभारत से आलोक मिलता है। इसीलिए उसे ज्ञानमय प्रदीप कहा गया है। वह एक सनातन स्रोत है और निरन्तर आधुनिक है। इसमें किसी युग-विशेष का ही चित्र नहीं है; मनुष्य के सामाजिक विकास के अनेक सोपान महाभारत में वर्णित मिलते हैं—उस समय से ले कर, जब विवाह संस्था नहीं थी, उस समय तक जब विवाह-संस्था दृढ़ हो चुकी थी; जब चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का प्रारम्भ नहीं हुआ था, वहाँ से ले कर वहाँ तक जब चातुर्वर्ण्य स्थापित हो चुका था। इसलिए महाभारत ग्रन्थ के आधार पर महाभारत-युग की बात करना कोई संगति नहीं रहता। इसी प्रकार यद्यपि महाभारत में अनेक देशों की चर्चाएँ हैं तथापि उस का घटना-केन्द्र कुरु-पाञ्चाल प्रदेश ही रहता है। इस स्थूल सचाई के. बावजूद महाभारत कुरु-पाञ्चाल देश का काव्य नहीं है। वह केवल भारत देश का भी काव्य नहीं है। न वह किसी विशेष प्रकार के रक्त वाले जन-समूह का काव्य है। महाभारत रक्त के मिश्रण, जातियों के सङ्कर और क्षेत्रीय सीमाओं के निरन्तर टूटते रहने से जो विचित्र प्रकार की मानवीय एकता की परिस्थिति उत्पन्न होती है, उस परिस्थिति का काव्य है। उसमें कहीं भी किसी भी प्रकार की संकीर्णता नहीं दीखती।

दुर्भाग्य की बात यह है कि ऐसी व्यापक भावभूमि के काव्य को तथाकथित ऐतिहासिक अध्ययन के चक्रव्यूह में ऐसे डाल दिया गया है कि इस ग्रन्थ की चर्चा के तीन ही रूप विशेष महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। ये तीनों रूप महाभारत के केन्द्र से सम्बन्ध नहीं रखते, उसके हाशिये से सम्बन्ध रखते हैं। पहला रूप है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाभारत की तिथि का विचार। दूसरा रूप है उसकी प्रामाणिकता पर विचार और तीसरा है उसके धर्मशास्त्रीय रूप पर विचार। महाभारत का रचनाकाल पहले पश्चिमी विद्वानों द्वारा गुप्त काल माना जाता रहा। और यह माना जाता रहा है कि जिस रूप में आज महाभारत मिलता है उस रूप तक पहुँचने में कम से कम छः सौ वर्ष लगे होंगे। पहले सूतों और मागधों के बीच किसी पुराने युद्ध के गीत नाराशंसी गाथा के रूप में कई पीढ़ियों तक प्रचलित रहे होंगे। उसके अनन्तर एक कहानी का आकार उसे 'जय' नाम से मिला होगा। इस जय का विस्तार हुआ होगा तो लगभग चौबीस हजार श्लोकों का 'भारत' रचा गया होगा। इस भारत में अनेक उपाख्यान और अवान्तर प्रसंग जोड़ कर 'महाभारत' का यह वर्तमान रूप प्रचलित हुआ होगा। सुखथणकर ने यह भी कल्पना की है कि वर्त्तमान महाभारत भृगुओं की कृति है जिसमें भृगुवंश के महत्त्व का एक ओर सन्निवेश कर दिया है और दूसरी ओर इसमें वैष्णव भक्ति के नये आयाम को मूल कथा के ऊपर आरोपित कर दिया है। विंटरनिट्ज जैसे विद्वान् तो श्रीमद्भगवद्गीता की भी महाभारत से अलग रचना मानते हैं। वह इन दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं देख पाते हैं।

महाभारत के दो प्रकार के विभाजन हैं—अष्टादश पर्वात्मक और शत-पर्वात्मक। अठारह पर्वों के क्रम से नाम हैं—आदि, सभा, वन, विराट्, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रास्थानिक, स्वर्गारोहण। इसके खिल पर्व के रूप में हरिवंश का नाम लिया जाता है। महाभारत की पाण्डुलिपियों के तीन मुख्य संस्करण मिलते हैं—नीलकण्ठ की प्रति, कुम्भकोणन् की प्रति और भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की प्रति। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने यह स्थापना की है कि महाभारत काल में ही महाभारत का प्रथम संस्करण व्यास ने तैयार किया। दूसरा संस्करण वैशम्पायन ने उन से कुछ ही समय बाद तैयार किया। तीसरा संस्करण सौति ने ई० पू० चौथी या तीसरी शताब्दी में तैयार किया और नैमिषारण्य में शौनक को सुनाया। सौति ने पर्वशः श्लोक संख्या देते हुए एक अनुक्रमणी बनायी। इस अनुक्रमणी से सम्प्रति प्राप्त संस्करणों में कुछ न कुछ अन्तर है। उस अन्तर की तालिका श्री सातवलेकर ने तैयार की है जो अगले पृष्ठ पर दी जा रही है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर्व	अनुक्रमणिकोक्त प्रति		नीलकण्ठ की प्रति		कुम्भकोणं की प्रति		भण्डारकर ऑरियण्टल रिसर्च इंस्टी० प्रति	
	अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक
आदिपर्व	२२७	८८८४	२३४	८४६६	२६०	१०९९८	२१८	७९८४
सभा०	७८	२५११	८१	२७०२	१०२	४३७७	७२	२५११
वन०	२६९	११६६४	३१५	११८५४	३१५	१४०८१	२६९	११६६४
विराट्०	६७	२०५०	७२	२३२७	७८	३५७५	६७	२०५०
उद्योग०	१८६	६६९८	१९६	६६१८	१९६	६७५२	१८६	६६९८
भीष्म०	११७	५८८४	१२२	५८१७	१२२	५९०८	११७	५५८८
द्रोण०	१७०	८९०९	२०२	९५९३	२०३	१०१२७	१७०	८९०९
कर्ण०	६९	४९६४	६६	४९८७	१०१	४९८६	६९	४९००
शल्य०	५९	३२२०	६५	३६०८	६६	३५९४	५९	३२२०
सौप्तिक०	१८	८७०	१८	८१०	१८	८१५	१८	८७०
स्त्री०	२७	७७५	२७	८२६	२७	८०७	२७	७७५
शान्ति०	३२९	१४७३२	३६६	१३७३२	३७५	१५१५३	३३९	१४५२५
अनुशासन०	१४६	८०००	१६९	७८३९	२७४	१०९८३	१४६	६७२०
आश्वमेधिक०	१०३	३३२०	९२	२८५२	११८	४५४३	१३३	३३२०
आश्रमवासिक०	४२	१५०६	३९	१०८५	४१	१०९८	४२	१५०६
मौसल०	८	३२०	८	२८७	९	३००	८	३००
महाप्रास्थानिक०	३	१२०	३	१०९	३	१११	३	१२०
स्वर्गारोहण०	५	२०९	६	३०७	६	३३७	५	२००
हरिवंश० ×	२६३	१२०००	—	१२०००	—	१२०००	—	१२०००
योग	२३७२	९६८३६		९५८२६		९८५४५		९४२४६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस तालिका को देखने से लगता है कि हरिवंश के सम्बन्ध में तो यह तालिका सभी प्रतियों में एक-सी है। किन्तु अठारह पर्वों की तालिका अनुक्रमणी की तालिका से मेल खाती है भण्डारकर इंस्टीट्यूट की प्रति के साथ। यही प्रति सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती है। उपपर्वों की नामावली इस प्रकार है—अनुक्रमणिका, पौष्य,पौलोम, आस्तीक, आदिवंशावतरण, शकुन्तलोपाख्यान, ययाति उपाख्यान, सम्भव, जातुगृहदाह, हिडिम्बवध, बकवध, चैत्ररथ, वाशिष्ठोपाख्यान, द्रौपदी-स्वयंवर, विदुरागमन, राज्यलम्भ, सुन्दोपसुन्दोपाख्यान, अर्जुन वनवास, सुभद्रा-हरण, खाण्डवदाह, सभा, मन्त्र, जरासन्धवध, दिग्विजय, राजसूय, अर्थाभिहरण, शिशुपालवध, द्यूत, अनुद्यूत, आरण्यक, किरमीरवध, कैरात, इन्द्रलोकाभिगमन, तीर्थयात्रा, रामोपाख्यान पर्व, नलोपाख्यान पर्व, सुकन्योपाख्यान, मान्धातोपाख्यान, अष्टावक्रीयोपाख्यान, यवक्रुतोपाख्यान, जटासुरवध, यक्षयुद्ध, आजगर, मार्कण्डेयसमास्या, द्रौपदी सत्यभामासंवाद, घोषयात्रा, मृगस्वप्नभय, व्रीहिद्रौणिक, द्रौपदीहरण, कुण्डलाहरण, आरणेय, वैराट, कीचकवध, गोग्रहण, वैवाहिक, उद्योग, संजययान, प्रजागर, सनत्सुजात, यानसंधि, भगवद्-यान, वारुणोपनिवाद, अभिनिर्याण, भीष्माभिसेचन, उलूकयान, संख्या, अम्बोपाख्यान, जम्बूखण्डनिर्माण, भूमि, भगवद्गीता, भीष्मवध, द्रोणाभिषेक, संशप्तकवध, अभिमन्युवध, प्रतिज्ञा, जयद्रथवध, घटोत्कचवध, द्रोणवध, नारायणास्त्रमोक्ष, कर्णवध, शल्यवध, ह्रदप्रवेश, तीर्थयात्रा, गदायुद्ध, सौप्तिक, ऐषीक, जलप्रदानिक, श्राद्ध, राजधर्म आपद्धर्म, मोक्षधर्म, दानधर्म, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, नारदागमन, मौसल, महाप्रास्थानिक, स्वर्गारोहण तथा खिलपर्व (हरिवंश)।

शतपर्वात्मक महाभारत का उल्लेख मध्य एशिया में प्राप्त एक बौद्ध पाण्डुलिपि में मिलता है और पर्वों के नाम भी मिलते हैं। कुछ नाम पढ़ने में नहीं आते हैं किन्तु खिलपर्व का नाम स्पष्ट रूप से मिलता है। कनिष्क के काल के अश्वघोष ने वज्रसूची उपनिषद् में हरिवंश के श्लोक का उदाहरण दिया है। बोधायन के गृह्य सूत्र में विष्णुसहस्रनाम का उल्लेख है तथा गीता से उद्धरण दिया गया है। पाणिनि ने 'भारत' शब्द का अर्थ भारतसंग्राम किया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत एवं महाभारत का उल्लेख है। पाणिनि ने युधिष्ठिर भीम, विदुर और महाभारत के सन्दर्भ (अष्टाध्यायी—८/३/९५, ३/२/१६२, ३/४/७४, ६/२/३८) अपने सूत्रों में दिये हैं। पतञ्जलि ने कौरव-पाण्डव-युद्ध का उल्लेख किया है। बौद्ध वाङ्मय में जातकों में पाण्डवों की कथा मिलती है। किन्तु महाभारत का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। अब मध्य एशिया के प्रमाण से इतना निश्चित है कि महाभारत का शतपर्वात्मक रूप ईसा की पहली शताब्दी पूर्व मध्य एशिया तक प्रसिद्ध हो गया था। इसका अर्थ यह तो है ही कि कम से कम उसके सौ वर्ष पूर्व यह रूप प्रस्तुत हो चुका था। अतः यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानना कि महाभारत को अन्तिम रूप गुप्त काल में दिया गया और उसके रचने की प्रक्रिया ई० पू० ४०० में शुरू हुई, तथ्य का अपलाप करना है। निश्चय ही वर्त्तमान रूप में महाभारत ई० पू० तीसरी-चौथी शताब्दी में बन चुका था और भारतीय जाति-स्मृति के लिए 'जय' और 'भारत' केवल इतना महत्त्व रखते हैं कि वे 'महाभारत' में समा गये हैं। उनको अलग करना भारतीय प्रज्ञा ने आवश्यक नहीं समझा।

पाश्चात्य विद्वानों में केवल तीन विद्वान ऐसे हैं जिन्होंने महाभारत को एक अन्वित रचना माना है। डालमान ने माना है कि महाभारत एक व्यक्ति की काव्य-रचना है क्यों कि उसमें एक सुनिश्चित पूर्वापर सम्बन्ध है और एक सुनिश्चित काव्य-उद्देश्य की पूर्ति है। सिल्वाँ लेवी ने भण्डारकर स्मृति ग्रन्थ के अपने निबन्ध में लिखा है कि महाभारत एक मुख्य रस की निष्पत्ति के लिए केन्द्रभूत सत्य को निरन्तर ध्यान में रखते हुए कलात्मक और संगठित ढंग से रचा गया ग्रन्थ है। तीसरे विद्वान हम्बोल्ट ने श्रीमद्भगवद्गीता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत की परिस्थितियों से उद्भूत है, उसकी स्थिति उसके अंग के रूप में हैं।

परन्तु ओल्डनबर्ग, होल्त्समान और विंटरनिट्ज ने महाभारत को एक निरन्तर परिवर्द्धमान ग्रन्थ माना है जिसमें कई व्यक्तियों की रचनाएँ हैं, पुरानी रचना का नया रूपान्तरण है। और होल्त्समान ने तो यहाँ तक माना है कि पूर्व महाभारत में पाण्डव विजेता नहीं थे, कौरव विजेता थे, पाण्डवों का उदात्तीकरण बाद की कल्पना है। विंटरनिट्ज ने 'भारतीय साहित्य का इतिहास' के प्रथम खण्ड में महाभारत के रचना-काल के सम्बन्ध में संक्षेप में ये विचार रखे हैं:

१. महाभारत में कुछ अलग-अलग मिथ, पुराकथाएँ, आख्यान, काव्यांश, वैदिक युग के हैं।
२. भारत या महाभारत नाम के महाकाव्य का अस्तित्व वैदिक युग में नहीं था।
३. महाभारत के बहुत से नीतिपरक आख्यान और सूक्तियाँ श्रमण या तपोवन काव्य हैं जो छठी शताब्दी से आगे रचा जाता रहा और इसमें बौद्धों और जैनों का योगदान था।
४. यदि किसी तरह यह मान भी लिया जाये कि चौथी शताब्दी के पूर्व महाभारत नाम के ग्रन्थ का अस्तित्व था तो कम से कम इतना तो सच है कि बौद्ध धर्म की प्रादुर्भाव-भूमि में यह अत्यन्त अल्प-ज्ञात था।
५. महाभारत नाम के काव्य के चौथी शताब्दी ई० पू० के कोई भी निर्णायक साक्ष्य नहीं हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६. चौथी शताब्दी ई० पू० से ईसा तक लगभग छः सात सौ वर्षों तक महाभारत आकार में धीरे-धीरे विपुल होता रहा।
७. चौथी शताब्दी ईसवी में ग्रन्थ का वर्तमान रूप समग्र रूप में रचा जा चुका था।
८. इसके बाद की शताब्दियों में भी कुछ नगण्य से संशोधन, परिवर्द्धन होते रहे।
९. महाभारत की कोई एक तिथि नहीं है। पर उसके विभिन्न अंशों की तिथि का निर्धारण किया जाना चाहिए।

भारतीय विद्वान् भण्डारकर एवं सुखथणकर महाभारत के वहुकर्तृक होने का समर्थन करते हैं और यह मानते हैं कि कई परम्पराओं के जुड़ने से महाभारत का निर्माण हुआ है। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एक व्यास की सत्ता तो स्वीकार करते हैं पर यह नहीं मानते हैं कि वर्तमान महाभारत उन की रचना है। बाल गंगाधर तिलक श्रीमद्भगवद्गीता पर लिखी हुई अपनी टीका में यह सिद्ध करते हैं कि महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता अंगांगी भाव से स्थित हैं। परम्परा यह मानती है— जैसा कि पहले कहा जा चुका है—कि जाति स्मृति में सुरक्षित व्यास की रचना को ई०पू० तीसरी या चौथी शताब्दी में नैमिषारण्य में वर्तमान रूप में सुनाया तब से इसमें नगण्य परिवर्तन हुए। महाभारत के पूरे विन्यास को और उसके लक्ष्य को विना समझे हुए तथा उसके काव्य-पक्ष का महत्त्व अनदेखा करते हुए जो लोग महाभारत की मीमांसा करते हैं, वे विंटरनिट्ज जैसे निष्कर्ष पर पहुँचेंगे ही। महाभारत की चीर-फाड़ और महाभारत के पाठ-निर्धारण तथा उसके मूलरूप की तलाश, ये सभी प्रयत्न महाभारत की प्राणवत्ता से अस्पृष्ट लोगों के ही द्वारा हुए हैं। यह मान भी लें कि महाभारत मौखिक परम्परा से लिखित परम्परा में रूपान्तरित हुआ, इस कारण उसमें परिवर्तन हुए हैं, उससे महाभारत की एकता कैसे असिद्ध होती है ? महाभारत में कहीं मुख्य कथा और आख्यानों में पोष्य-पोषक भाव न हो, अन्तर्विरोध हो तो यह कहना उचित होगा कि इनमें अनमेल जोड़ है। पर यदि अनुक्रमणी से ले कर स्वर्गारोहण पर्व तक एक बीजकथा का ही विस्तार है और उपकथाएँ उस बीज कथा को पल्लवित करती दीखती हैं तो इस रचना के पीछे एक मस्तिष्क काम कर रहा है, यह मानना ही पड़ेगा। काव्य की गहराई में जाने पर यह भी मानना पड़ेगा कि इस ग्रन्थ में रामायण के रचनाकार वाल्मीकि की तरह व्यास की भी एक विचित्र प्रकार की सम्पृक्तता है। इसी सम्पृक्तता के कारण ही यह रचना कोरा इतिहास नहीं है; न विश्वकोश है; यह इतिहास-काव्य है। यह एक मानवीय नियति की विषमता की चिन्ता करने वाला महत्त्व का काव्य है। इसमें यदि कुछ परिवर्द्धन या पुनरुक्ति है, तो वाचिक परम्परा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के द्वारा इसके प्रचलित होने के कारण। किन्तु यह भी सही है कि वाचिक परम्परा के ही कारण इसमें अन्विति भी सुरक्षित रही है। इसमें एक सूत्रता बिखरने नहीं पायी है क्योंकि समग्र ग्रंथ का पाठ या वाचन होता था और वाचक के ऊपर श्रोताओं की स्मृति का नियन्त्रण लगा रहता था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने महाभारत का वैशिष्ट्य निरूपित करते हुए कहा है कि "व्यास जी का अभिप्राय केवल युद्धों का वर्णन ही नहीं है अपितु इस भौतिक जीवन की निस्सारता दिखला कर प्राणियों को मोक्ष के लिए उत्सुक बनाना है। इसीलिए महाभारत का मुख्य रस शान्त है, वीर तो अंगभूत है···महाभारत के पात्रों में एक विचित्र सजीवता भरी हुई है।···व्यास कर्मवादी आचार्य हैं। कर्म ही मनुष्य का सच्चा लक्षण है। कर्म से पराङ्मुख व्यक्ति मानव की पदवी से सदा वंचित रहता है।" महाभारत का यह वाक्य—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
नहिं मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्

(शान्ति पर्व १८०।१२)

यह इंगित करता है कि मानवता का उन्नायक तत्त्व पुरुषार्थ है; इसी को महाभारतकार ने प्राणिवाद कहा है। जगत् में जिन लोगों के पास हाथ है और हाथ से कर्म करने का उत्साह है उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं—

अहो सिद्धार्थता तेषां एषां सन्तीह पाणयः।
अतीव स्पृहये तेषां एषां सन्तीह पाणयः ।।

(शान्ति पर्व १८०।११)

भारतीय शास्त्रीय दृष्टि महाभारत के धर्म पर अधिक विलोमित हुई है और स्मृतियाँ, प्रबन्ध-ग्रन्थ महाभारत को प्रमाण मानते रहे हैं। काव्यशास्त्र के रचयिताओं में केवल आनन्दवर्धन का ध्यान महाभारत के काव्य पक्ष पर गया पर उन्होंने भी सिवाय इसके कि महाभारत का मुख्य रस शान्त है और महाभारत में प्रबन्धक ध्वनियों के उदाहरण मिलते हैं, महाभारत के काव्य-गठन की विशद मीमांसा प्रस्तुत नहीं की। महाभारत के वाचन की भी परम्परा भागवत के प्रादुर्भाव के बाद कम हो गयी। बाणभट्ट ने ईसा की सातवीं शताब्दी में महाभारत के वाचन की परम्परा का आदरपूर्वक उल्लेख किया है परन्तु मध्य युग में ऐसा लगता है कि श्रीमद्भागवत और रामकथा के पारायण और पाठ की परम्परा अधिक प्रबल रही। महाभारत और अन्य पुराणों के समग्र वाचन की परम्परा कुछ क्षीण हो गयी। कदाचित् इसीलिए महाभारत के अलग-अलग आख्यानों पर तो काव्य लिखे गये पर महाभारत का समग्र रूपान्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत में मध्य युग में भारतीय भाषाओं में नहीं हुआ। अधिकतर लोगों ने संक्षिप्त कथा ही आधुनिक भाषाओं में लिखीं जैसे सबलसिंह चौहान ने हिन्दी में महाभारत लिखा। किन्तु जावा में 'भारत युद्ध' नाम की रचना समग्र महाभारत की कवि भाषा में प्रस्तुति के रूप में मध्य काल के आरम्भ में मिलती है। महाभारत के काव्य पक्ष पर पुनर्विचार उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू हुआ जब उसका रमेशचन्द्र दत्त द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद हुआ और उस पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, चक्रवर्ती राज-गोपालाचार्य, बाल गंगाधर तिलक, चिन्तामणि विनायक वैद्य, श्री अरविन्द जैसे विचारकों का ध्यान गया। तब से भारत में महाभारत के सर्जनात्मक महत्त्व का मूल्यांकन शुरू हुआ। इस मूल्यांकन में बल पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व के विश्लेषण तथा महाभारत के आध्यात्मिक संकेत के निरूपण पर या महाभारत के सामाजिक दर्शन के विश्लेषण पर रहा। काव्य की दृष्टि से ग्रन्थ के सौन्दर्य का अध्ययन प्रकीर्ण शोध प्रबन्धों में टुकड़ों-टुकड़ों में किया जाता रहा। ग्रन्थ की एकान्विति पर समग्र दृष्टि से विचार मेरी जानकारी में शुद्ध साहित्य की दृष्टि से अब तक नहीं किया गया है। मैंने महाभारत मीमांसा की अद्यतन स्थिति पर जो संक्षेप में पर्यालोचन किया उसका उद्देश्य केवल अपने व्याख्यान की वह पृष्ठभूमि देना है जिसके कारण मेरे मन में असन्तोष बना रहा कि महाभारत के काव्यार्थ की मीमांसा नहीं हुई।

मेरे मन में यह बात बहुत दिनों से सालती रही है कि महाभारत के कवि को क्यों नहीं पहचाना गया? मैं महाभारत का पाठक अचानक बन गया। मेरे घर बचपन में इण्डियन प्रेस का हिन्दी महाभारत आया और आधा समझे आधा अनसमझे इस के सभी खण्ड पढ़ गया। तब बुद्धि एक दम अधकचरी थी। पर इस हिन्दी संस्करण के पढ़ने के पूर्व ही महाभारत की कहानी मुझे मेरे बाबा चार वर्ष की अवस्था में ही सुना चुके थे। उस की एक अपनी गहरी छाप थी ही। संस्कृत ग्रन्थों का अर्थ-ग्रहण करने की क्षमता आते ही मैंने कालेज के दिनों में ही महाभारत मूल में पढ़ना शुरू किया। संयोग से दिल्ली से हिन्दी अनुवाद के साथ कई खण्डों में एक संस्करण छपा। प्रति खण्ड उस का दाम दो रुपये था। यह भी हमारे घर आया और मुझे इसे आदि से अन्त तक पढ़ने का सुयोग मिला। जहाँ तक मुझे स्मरण है, रामचन्द्र महारथी द्वारा सम्पादित था। उस के बाद मैंने महाभारत का पारायण अधिक परिपक्व होने पर आदि से अन्त तक दो-तीन बार किया। तब मन में यह संकल्प उठा कि मैं महाभारत के काव्य पक्ष का निरूपण करूँ। संयोग से वत्सल निधि की १९८४ की हीरानन्द शास्त्री व्याख्यानमाला के लिए कोई उपयुक्त विद्वान् मिल नहीं रहा था तो 'द्राव्याभावे अक्षतान्' न्याय से मुझे पकड़ा गया और मैंने मूर्खतावश न केवल इसे स्वीकार किया, इसके साथ ही 'महाभारत का काव्यार्थ' यह विषय भी मैंने ले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया। पर जब मैं व्याख्यान का लिपिबद्ध रूप तैयार करने बैठा तो मुझे अपनी असमर्थता और अज्ञता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा। विवशता ऐसी थी कि मुझे यह काम निश्चित अवधि के भीतर पूरा करना था। इसके लिए पुनः महाभारत का पारायण करने बैठा तो महाभारत ग्रन्थ नहीं रह गया। वह दुर्लंघ्य महासागर बन गया। मैं इसकी अनन्तता और गहराई में खो गया। जो भी लिखा वह एक खोयी हुई स्थिति में—उसमें कोई सचेत प्रयत्न नहीं है।

महाभारत काव्य मेरे सामने उस समय प्रश्न के रूप में सामने आया : इसका मुख्य रस शान्त है या करुण? और उस के इस द्वन्द्व के भीतर गुजरते हुए महाभारत का एक अतिक्रामी अर्थ प्रस्तुत हुआ कि मुख्य रस न शान्त है, न करुण अपितु मुख्य रस एक अव्यय भाव है, अच्युत भाव है, एक सर्वभूतात्म-भाव है। सत्य का करुणा के साथ संयोजन है। इसी रूप में व्याख्यान लिख गया। इस में न अलंकारों की चर्चा है, न पाँच अवस्थाओं की, न सन्धियों की। संस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि से निरूपण का कोई प्रयत्न ही नहीं है। भारतीय मानस की पहचान महाभारत में कितनी है, केवल यही जिज्ञासा व्याख्यान रात-रात लिखाती रही। मैंने उचित यही समझा कि जिस रूप में यह लिख गया है, नादानी में ही सही, लाचारी में ही सही, उसे उसी रूप में जाने दिया जाय। इस विचार के पीछे एक दूसरा कारण भी था अपने श्रोतृवर्ग की सहृदयता का आदर। जिन प्रबुद्ध श्रोताओं ने दिल्ली में इसे सुना (उन श्रोताओं में हिन्दी के कवि, लेखक तो थे ही, संस्कृत एवं इतिहास के भी पण्डित थे) वे अपने सुने हुए रूप को पुनः देखना चाहेंगे, उसमें परिवर्तन करने से उनको शिकायत हो सकती है। मैं आदरणीय भाई श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन के प्रति खीझ भरी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ कि उन्होंने अयोग्य व्यक्ति की अयोग्यता का अनावरण कराने के लिए यह व्याख्यान मुझ से लिपिबद्ध कराया। पर जो भी हो, आंशिक रूप में ही सही, महाभारतकार के ऋण की (जिस में भारत का ही व्यक्ति नहीं, समझदार मनुष्य मात्र मेरा साझीदार है) निष्कृति या और ठीक कहें स्मृति मात्र इस बहाने हो गयी। मैं महाभारतकार के प्रति प्रणति और सहृदय श्रोताओं के प्रति आभार निवेदन करता हूँ।

वै. शु. ७/२०४२

—विद्यानिवास मिश्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहला अध्याय

सत्यं चाऽमृतं च

महाभारत का सत्य

महाभारत का महत्त्व अनेक दृष्टियों से आँका गया है। महाभारत-कथा के आधार पर भारत में काव्य और शिल्प में जो निरन्तर कलासृष्टि होती रही, उनका अध्ययन भी कम नहीं हुआ है, परन्तु स्वयं **महाभारत** काव्य है, बड़ी जातीय प्रज्ञा का काव्य है, इतिहास और पुराण से गुँथा हुआ होने पर भी धर्म-दर्शन से संवलित होने पर भी काव्य है, इस दृष्टि से पर्यालोचन कम हुआ है। श्रीमन्मध्वाचार्य ने **महाभारततात्पर्य-निर्णय** लिखा और इस ग्रन्थ का मूल लक्ष्य वासुदेव-भक्ति प्रतिपादित किया। अद्वैत वेदान्त के रंग में सदानन्द यति ने **महाभारततात्पर्य-प्रकाश** लिखा और महाभारत का तात्पर्य अविद्या का नाश सिद्ध किया। नीलकंठ दीक्षित ने **भारतभावदीप** टीका लिखी, इस टीका के ऊपर भी अद्वैत सिद्धांत का गहरा रंग है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से **ध्वन्यालोक** में आनन्दवर्धन ने संकेत किया कि महाभारत शान्तरस-प्रधान प्रबन्ध काव्य है। आधुनिक युग में महाभारत की भाषा, भाषा के उपादानों और उसके मिथों की आलोचना भी कुछ-कुछ हुई है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, चिन्तामणि वैद्य, अरविन्द सुखथणकर, राजगोपालाचारी, उमाशंकर जोशी, इरावती कर्वे, भैरप्पा प्रभृति कवियों-विचारकों ने महाभारत-मीमांसा प्रस्तुत की है। इन सब का महत्त्व और ऋण स्वीकार करते हुए भी ऐसा लगता है कि महाभारत के काव्यार्थ पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। मैं इसी अतृप्ति से प्रेरित हो कर महाभारत में डुबकी लगाना चाहता हूँ।

आदि से अन्त तक महाभारत पढ़ जाना अपूर्व अनुभव है। पुराने पंडितों में मान्यता है कि महाभारत को आदि से न पढ़ कर अन्त से पढ़ना चाहिए अर्थात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहले शान्तिपर्व और उसके बाद के पर्व पढ़ कर आदि पर्व से स्त्रीपर्व तक आना चाहिए, नहीं तो मंगल नहीं होता। मुझे पूरा पढ़ लेने पर यह मान्यता सही लगती है। शान्तिपर्व से अध्ययन प्रारम्भ करने से महाभारत के सत्य के व्यापक स्वरूप का एक चौखटा मिलता है, उसमें पूरी पूर्ववर्ती घटना को रख कर देखने पर लड़ाई और झगड़े वाली बात छोटी हो जाती है। लड़ाई-झगड़े को और उसमें प्राप्त जय को महत्त्वपूर्ण मानना ही तो अमंगल है और अपने भीतर के तनावों पर विजय को जय मान कर छोटे और बड़े जय-पराजय का अर्थ समझना ही मंगल है।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥
(शा० प० १५४।३९)

वास्तविक अपराजयभाव महाभारत के अनुसार यह है कि सुख हो, दुःख हो, प्रिय हो, अप्रिय हो, जो मिले उसे सहज रूप में स्वीकार करो, कभी भी हृदय में पराजय न स्वीकार करो, न सुख से, न दुःख से, न अनुकूल से, न प्रतिकूल से।

अब प्रश्न यह उठता है कि ग्रन्थ का प्रारम्भ तब आदि पर्व से क्यों होता है, शान्तिपर्व से क्यों नहीं? इसका समाधान है। ग्रन्थ का प्रारम्भ तो अन्त से ही होता है, ग्रन्थ के श्रोता हैं जनमेजय, महाभारत युद्ध से दो पीढ़ी आगे के राजा, एक प्रकार से महाभारत के वीरों के उत्तराधिकारी जो प्रतिशोध में सर्प-यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं, और प्रतिशोध की आग शान्त होने पर महाभारत कथा सुनने की पात्रता पाते हैं। श्रीमद्भागवत में भी यही क्रम है, श्रीकृष्ण लीला समेट के चले जाते हैं, उसके बाद भयंकर रिक्तता आती है, पर उस रिक्तता में ही परीक्षित् को तलाश रहती है उस रूप की जिसने गर्भ में रक्षा के ब्रह्मास्त्र से, वे चारों ओर उसे ही देखते रहते हैं। यकायक एक बार इनसे प्रमाद होता है और वही परीक्षित् शापग्रस्त होकर श्रीकृष्ण कथा सुनने के लिए पर्युत्सुक हो जाते हैं। शान्तिपर्व क्रम में बाद में आता है, सही, काव्य का वही सही क्रम है, परन्तु सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए वहाँ से प्रारम्भ करने पर महाभारत के सत्य को समझने की अधिक अच्छी मानसिक तैयारी हो जाती है। महाभारत में भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य चार-चार पर्व तो सीधे अठारह दिनों के युद्ध के वर्णन के हैं। उसके पूर्व का उद्योग पर्व भी युद्ध की तैयारी का है। उसका उत्तरवर्ती पर्व स्त्री-पर्व युद्ध की विनाशलीला के तीव्र अनुभव का है। श्लोक-संख्या भी इन पर्वों की कुछ मिला कर बहुत विपुल है, लगभग आधा से अधिक काव्य युद्ध में ही चला जाता है और इस पर भी दावा यह कि शान्ति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर्व से ही महाभारत का आरम्भ करें और फिर यहीं लौटें। शम ही इस ग्रन्थ का चरम तात्पर्य है, यह बात समझ में नहीं आती। महाभारत तो वीरगाथा है या इतिहास के पंडितों की शब्दावली का प्रयोग करें तो अनेक पूर्ववर्ती नाराशंसी गाथाओं को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न है या और अधिक स्थूलदर्शी हो कर बात करें तो एक छोटी-सी क्षेत्रीय या क्षेत्रीय भी नहीं पारिवारिक लड़ाई को कुछ बड़ी लड़ाई के रूप में दिखा कर इसे महत्त्व देने का प्रयत्न है। इस तर्क का (मैं इसे कुतर्क नहीं कहता) ठीक समाधान तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि हम महाभारत को एक सम्पूर्ण इकाई नहीं मानते और इस इकाई को सम्पूर्ण काव्य नहीं मानते। महाभारत अनेक शताब्दियों की रचना है, अनेक व्यक्तियों की या अनेक व्यासों की रचना है, इतना कहने से इस ग्रन्थ की (जिस रूप में यह उपलब्ध है) अन्विति की बात कट नहीं जाती, क्योंकि महाभारत वाचिक परम्परा के विकास की चरम परिणति है और यद्यपि इसके दक्षिणी-उत्तरी दो मुख्य और एकाध और संस्करण देश में मिलते हैं, परन्तु ये सभी संस्करण सहस्राब्दियों से भारतीय स्मृति में अखण्ड ग्रन्थ के रूप में समादृत हैं। महाभारत की वृक्ष के रूप में अवधारणा, इसके आदिपर्व में ही की गयी है, इसका दूसरा और क्या तात्पर्य हो सकता है, सिवाय इसके कि इसमें कोई भी वस्तु बाहर से नहीं जुड़ी है। मूल कथा में ही उपकथाओं के विकास की सम्भावना निहित है, काव्य-योजना का बीज वही रहता है जैसे पेड़ का तना वही रहता है, बड़ी डालें वही रहती हैं, टहनियाँ नयी होती जाती हैं, पत्ते और फूल नये होते जाते हैं और जब पेड़ में फल आ जाते हैं तो पेड़ का एक निश्चित आकार बन जाता है, ठीक वही बात महाभारत के साथ घटित हुई है और इसमें जो भी रूपान्तर हुए वे इसके फलवान् होने के पूर्व हुए। पर वे रूपान्तर जिनके द्वारा किये गये, वे स्वयं महाभारत कथा में ऐसे रमे हुए थे कि उनका सम्पूर्ण अस्तित्व महाभारतमय हो गया था। उनके अलग नाम नहीं हैं, वे महाभारत के मूल संकल्पयिता के संकल्प से जुड़े हुए हैं, वे रूपान्तर करते हैं तो वह रूपान्तर उनकी अकेले की सृष्टि नहीं है, यह उनके महाभारत-वाचन और महाभारत श्रोता समाज के साथ निरन्तर संवाद-स्थापन की सृष्टि है। वह समाज महाभारत की घटनाओं में चमत्कार की आशा से महाभारत नहीं सुनता रहा है। ये घटनाएँ तो उसे लोरी के साथ प्राप्त हुई होती हैं। वह समाज महाभारत सुनता है अपने बड़े संस्कार को नया करने के लिए, अपने को महाभारत, बड़े भारत की अस्मिता देने के लिए। महाभारत का श्रवण उसके लिए नया जन्म है, जिसमें व्यक्तिगत राग-द्वेष छँट जाते हैं, छोटे और बड़े धर्मों के बीच अन्तर स्पष्ट दिखने लगता है और वास्तविक धर्म जड़ रूप में नहीं, क्रियाशील, जीवन्त और गतिशील रूप में (आज की नयी शब्दावली का प्रयोग करें तो जुझारू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रूप में) उद्भासित हो उठता है। भारतीय दृष्टि घटना को महत्त्व नहीं देती, घटना की परिणति को देती है और उस परिणति को देती है जो घटना के पात्रों को ही नहीं, घटना से संलग्न सहपात्रों को ही नहीं, उससे असंलग्न, पर वैसी घटना की सम्भावना से संलग्न समुदाय या समुदायों को प्रभावित करती है। इस दृष्टि से महाभारत के निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं की पहचान, और महाभारत के बीज रूप की तलाश और क्षेपकों के अलग करने की कोशिश, ये सभी कार्य अप्रासंगिक हैं। महाभारत जिस रूप में हमारे सामने है, वह जब रचा गया हो, जहाँ रचा गया है, उससे उसकी गुणवत्ता में कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वह इस रूप में ही हमारी विशाल जातीय प्रज्ञा की ऐसी विलक्षण सृष्टि है कि निरन्तर वह नये-नये सकर्मों, परिवेशों में नयी होती रहती है।

महाभारत के काव्यार्थ की वात इसी बिन्दु से शुरू होती है, यह अन्य काव्यों से कुछ अलग है, और समानताओं के होते हुए आदि काव्य **रामायण** से भी अलग है। रामायण जिन मानवीय सम्बन्धों की गहराई में जाता है, वे सम्बन्ध व्यक्ति और व्यक्ति के बीच हैं, वे व्यक्ति और व्यक्ति के बीच भी हैं, व्यक्ति और समाज के बीच भी। सबसे अधिक सार्थक रूप में वे एक ही व्यक्ति के भीतर एक साथ उद्वेलित दो या दो से अधिक धर्मों के बीच हैं। दूसरे शब्दों में महाभारत सम्बन्धों के गुँथाव का और सम्बन्धों के अतिक्रमण का काव्य है। रामायण में प्रश्न उठाया जाता है **"को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्"**? कौन इस समय और यहाँ इस लोक में इस देश-काल में, गुणवान् और वीर्यवान् है? इसके उत्तर में ग्रन्थ राम का अयन ऐसे गुणवान् चरित्र राम का स्थायी निवास वन जाता है। वहाँ मानवीय सम्बन्धों के निर्वाह के प्रतिमान हो जाते हैं राम और राम-कथा का जब नव रूपान्तर होता है तो साम्प्रतं और श्रीमान् लोक के समकालीनता और समदेशीयता का दबाव क्रियाशील हो जाता है।

भवभूति की राम-कथा, तुलसी की राम-कथा, हिन्देसिया की राम-कथा, थाई रामकीर्ति और लाओ राम-गाथा सभी में यह दबाव संलक्षित है। वहुत कुछ रूप बदला है, पर राम सम्बन्धों, रिश्तों-नातों के केन्द्र में बने रहते हैं। सती और कागभुशुंडि राम की व्यापक महिमा से घबरा कर उससे भागते हैं, आँखें मूँदते हैं तो उन्हें लाख-लाख देशों में लाख-लाख परिवेशों में लाख-लाख भिन्न-भिन्न समयों में वही राम दिखते हैं, इसका अर्थ यही तो है कि राम सम्बन्धों के नाभिक केन्द्र हैं। वह शाश्वत सत्य हैं।

महाभारत का प्रारम्भ भिन्न प्रकार से होता है, एक लम्बे गीत से आरम्भ होता है। धृतराष्ट्र यह गीत गाते हैं, जिसमें प्रत्येक कड़ी शुरू होती है 'यदाश्रौष' से—'जब से मैंने सुना है' और पांडवों के गुण या अभ्युदय या अपने पुत्रों के प्रमाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या किसी दोष की चर्चा बीच में होती है। कड़ी के अन्त में यह पंक्ति आती है **तदानाशंसे विजयाय संजय,** 'तभी से, संजय, मैंने विजय की आशा छोड़ दी'। इस पछतावे में पूरी कथा यथा-क्रम आ जाती है।

महाभारत के निर्माण की बात बाद में आती है। इस पछतावे से प्रारम्भ करने का क्या अर्थ है, इस पर जब हम विचार करते हैं तो हमें महाभारत के प्रत्येक पर्व के मंगल श्लोक की सार्थकता पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
नत्वा सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

जिसका सीधा-सादा अर्थ तो बस इतना है—

नारायण को, नर को और नरोत्तम को नमस्कार करके सरस्वती और व्यास की वन्दना करें तब जय ग्रन्थ का वाचन करें। टीकाकारों ने इस श्लोक की व्याख्या अनेक ढंगों से की है। कुछ ने कहा कि नारायण, नर, नरोत्तम, वाक्, व्यास और जय यह सभी कुछ श्रीकृष्ण हैं, वासुदेव हैं, महाभारत या जय नामक इतिहास वासुदेव की ही वाङ्मय विग्रह है, व्यास स्वयं कृष्ण हैं, नारायण, नर और नरोत्तम तीनों ही वासुदेव की तीन भूमिकाएँ हैं। सदानन्द यति ने व्याख्या की : नारायण और नर तो परमात्मा और जीवात्मा रूप में दो स्थितियाँ हैं, उन दोनों का अतिक्रमण करने वाली स्थिति नरोत्तम या पुरुषोत्तम की है, जैसा कि स्वयं महाभारत के ही अंगभूत गीता में कहा गया है—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

नारायण नर हो कर, विश्वात्मा समाहित व्यक्ति या योगीश्वर व्यक्ति हो कर इसलिए पुरुषोत्तम हैं कि वह लोक में अवस्थित हैं, लोक में अवस्थित रहते हुए वह लोकातीत अनुभव में अवस्थित हैं। सदानन्द यति व्याख्या को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि नारायण, नर और नरोत्तम तत्त्वों को प्रद्योतित करने वाली वाग् विद्या सरस्वती का स्मरण करके ही, उसके प्रति प्रणत हो कर ही, उससे व्याप्त हो कर ही अर्थात् व्यास की तरह उससे अभिभूत हो कर जय नामक विद्या या समस्त अविद्याओं के नाशक संसार जयी ग्रन्थ का उच्चारण करना चाहिए—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षरोपाधितया जीवो नर इत्यभिधीयते ।
अक्षरोपाधिको ह्यीशो नारायणपदाभिधः ।।
क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टो भगवान्पुरुषोत्तमः ।
ज्ञेयो ध्येयः समर्च्योत्र नरोत्तमपदाभिधः ।।
तद्द्योतिकां गिरं नत्वा ततो व्याप्स्तथैव सन् ।
संसारजयिनं ग्रन्थं जयनामानमीरयेत् ।।

(महाभारत-तात्पर्य-प्रकाश, पृ० ३)

मेरी समझ में एक और संकेत इस श्लोक में मिलता है। सरस्वती नदी के किनारे ही महाभारत युद्ध हुआ, सरस्वती किनारे ही व्यास ने बैठ कर ग्रन्थ की रचना की और स्वयं नदी के द्वीप में उत्पन्न हुए। वह महाभारत की घटनाओं के केवल साक्षी ही नहीं, उनमें पूरी तरह संलग्न हैं। हाँ, संलग्न होते हुए भी वह कुछ कर नहीं सकते। पूरा ग्रन्थ रच कर भी उन्हें लगता है कि कुछ नहीं होगा, कभी भी कुछ नहीं होगा, यह अरण्यरुदन व्यर्थ जायेगा।

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न च कश्चित् शृणोति माम् ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ।।

धर्म से ही अर्थ अर्थवान् है, काम अर्थवान् है, पर धर्म की अपेक्षा से अर्थ और काम में कोई प्रवृत्त होता, उलटे अर्थ और काम की अपेक्षा से धर्म में प्रवृत्त होता है। ऐसा व्यक्ति जब जय की बात करता है, अपने ग्रन्थ को जय नाम देता है, तो निश्चय ही वह जय न धृतराष्ट्र की विजय अवधारणा है, न केवल अविद्या का नाश है, वह जय भयंकर से भयंकर स्थिति में हृदय का अपराजित भाव है। उसी भाव से प्रेरित हो कर कोई न सुने तो भी सुनाने का संकल्प पूरा होता है, घटना-प्रवाह को रोक न पाने की व्यथा झेलने वाले व्यक्ति का विवेक मुखरित होता है। ऐसा अँधेरा बार-बार आयेगा, मूल्यों के सम्बन्ध में ऐसी धुन्ध बार-बार घेरेगी। प्रवाह में एक क्षण खड़े हो जाओ, इसके दोनों किनारों पर ही दो वृक्ष हैं, एक जड़ सहित उखड़ गया है, दूसरा एकदम निपात हो गया है, पर उसके पोर-पोर में कुछ हरियाली पुराने घाव की तरह ताजा हो रही है। एक मन्यु का महावृक्ष है, क्रोध-मोह-मद का वृक्ष है, उसका नाम है—दुर्योधन, कर्ण उस वृक्ष का तना है, शकुनि शाखा, दुःशासन उसका समृद्ध पुष्प-फल, और अविवेकी राजा धृतराष्ट्र उस वृक्ष की जड़ हैं :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुर्योधना मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ॥

(आ० प० १।१०१)

दूसरा धर्म का महावृक्ष है, इसका नाम है युधिष्ठिर। अर्जुन इसके तना हैं, भीमसेन शाखा हैं, नकुल-सहदेव इसके पुष्प और फल और इसकी जड़ हैं कृष्ण, वेद (ज्ञानराशि) और ज्ञानी जन।

दोनों की तुलना करने से एक बात स्पष्ट है। दुर्योधन को अधर्म वृक्ष नहीं कहा गया है, वह मन्यु वृक्ष है, अर्थात् उसमें धर्म का अभाव नहीं है, बस उसका धर्म शुद्ध नहीं है, अनाविल नहीं है, वह अहंभाव से रंजित और आच्छादित है, जबकि युधिष्ठिर का धर्म अहंकारहीन है, शुद्ध है, उसमें कोई रंग नहीं, कोई आवरण या दुराव नहीं, उनके विरोधी भी उनकी सत्यनिष्ठा में कभी सन्देह नहीं करते। दूसरी बात यह भी स्पष्ट है कि दुर्योधन रूपी मन्युवृक्ष की जड़ बहुत कमजोर है। एक अन्धा पुत्र-मोहाविष्ट राजा क्या शक्ति देगा जब कि धर्मवृक्ष की जड़ ज्ञानी श्रीकृष्ण ही नहीं, उनके साथ उनके साक्षात् अनुभव में आया हुआ समस्त जातीय, समस्त अपौरुषेय ज्ञान है और उस ज्ञान के साझीदार समस्त ज्ञानी हैं, समस्त ब्रह्मवेत्ता हैं, विश्व की अखंडता के द्रष्टा हैं! व्यास पुकार लगाते हैं, उखड़े वृक्ष को देखो, खड़े वृक्ष को देखो, दोनों खड़े वृक्ष के अकेलेपन की पीड़ा को देखो, यह देखना ही जय है, यह देखना ही अपने से ऊपर उठ जाना है, अपने दायरों से ऊपर उठ जाना है। मेरी यह व्याख्या, हो सकता है, बहुत से रूढ़िवादियों को (रूढ़िवादियों से मेरा तात्पर्य पश्चिमी चिन्तन की रूढ़ियों से ग्रस्त लोगों से है) अतिशयोक्ति लगे, पर इस व्याख्या से यह बात ठीक तरह से समझ में आती है कि धृतराष्ट्र की विजयाशंसा, धृतराष्ट्र के मन में विजय का स्वरूप क्यों गलत है। और तब इस जय ग्रन्थ की यह संगति भी समझ में आ जाती है कि विद्या-अविद्या के स्तर पर सोचें या न सोचें, जीवन की मूल अपेक्षाओं के स्तर पर ही सोचें तो भी इसमें धर्म की जय दिखलाना उतना उद्दिष्ट नहीं, क्योंकि धर्म और जय तो साथ रहते ही हैं—यतो धर्मस्ततो जयः—वास्तविक धर्म और वास्तविक जय के स्वरूप को साकार करना ही उद्दिष्ट है। इसी से एक मोह में घिरे व्यक्ति के पछतावे से; उसकी लाचारी से, उसकी उदासी से बात शुरू की जाती है और इसका अन्त एक बड़ी उदासी और उस बड़ी उदासी से मिली हुई शान्ति में होता है।

कुछ लोगों के मत से महाभारत के केन्द्र में शम नहीं है, यह करुणबोध है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि शम में कोई उद्वेलन नहीं होता। शायद इसी लिए नाट्यशास्त्र इसमें अभिनय की गहरी सम्भावना नहीं पाता और जिन आठ रसों के नाम गिनाता है, उनमें शान्त रस को स्थान नहीं देता। पर तात्त्विक दृष्टि से देखें तो शुद्ध अपना उद्वेलन तो शम में ही सम्भव है। किसी भी अन्य भाव में तो उद्वेलन किसी न किसी राग से उपहित चैतन्य का उद्वेलन होता है, पर जब सुख-दुःख दोनों ही उपेक्षणीय हो जायें, कुछ भी अनुकूल न रहे, कुछ भी प्रतिकूल न रहे, भाई-बन्धु सब छूट जायँ, प्रीति-वैर सब शान्त हो जाय, तब जो उद्वेलन होता है, कुत्ते जैसे एक उपेक्षणीय अपरिचित और संसार की दृष्टि में निकृष्ट प्राणी को बेसहारा या अकेला न छोड़ने का भाव उपजता है, जो एक निरपेक्ष करुणा उमड़ती है, वही तो वास्तविक जीवन-रस है, वही सत्य-रूपी अमृत है। महाभारत इसी अमृत का अनुसन्धान करता है, यह समुद्रमन्थन की तरह अगाध हृदय-मन्थन से दैवी और आसुरी दोनों प्रकार की शक्तियों के प्रयत्न से निकलता है। महाभारत शाश्वत सत्य से सन्तुष्ट नहीं, वह सनातन सत्य का अनुसन्धान करता रहता है। जब कभी इसके बड़े पात्र इस सत्य की पहचान नहीं कर पाते, कोई न कोई छोटा पात्र, किसी बहुत ही छोटी उपकथा का पात्र सत्य को पहचनवाता है। भीष्म-द्रोण द्रौपदी के जुए के दाँव पर चढ़ाये जाने पर चुप रहते हैं, दाँव हारने पर द्रौपदी के दासी के रूप में बुलाये जाने पर चुप रहते हैं। पर दुर्योधन का ही भाई विकर्ण उठ खडा होता है, कहता है, स्त्री सम्पत्ति नहीं है, जो दाँव पर रखी जाय। पूरा जुआ ही गलत है। उसे जवाब मिलता है, हाँ, कभी ऐसी बात थी, पर आज की व्यवस्था में स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है। विकर्ण कहता है, यह व्यवस्था सनातन व्यवस्था नहीं है :

विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथंचन।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं यद्धि वक्ष्यामि कौरवः॥
चत्वर्याहुर्मुनिश्रेष्ठा व्यवसनानि महीक्षिताम्।
मृगयां पानमक्षंश्च स्त्रीष चैवातिसक्तताम्॥
एष न नरस्सक्तो धर्ममुत्सृज्यवर्तते
तथायुक्ते न च कृतां क्रियां लोको न पश्यति।
एतत्सर्व विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम्॥

(सभा पर्व-द्यूतं ६१।१६०५४)

एकाएक विकर्ण के मुख से ऐसी बात कहलाने के पीछे यही तो अभिप्राय है कि सत्य को ढकने की कितनी कोशिश करें, वह ढका नहीं जा सकता, एक असहनीय घटना अकिंचन से अकिंचन के भीतर ढके सत्य को अनढकने का साहस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भर सकती है, क्योंकि वह सत्य सब के भीतर है । वह सत्य जीवन की अपरिहार्य शर्त है । इसे उलट कर भी कह सकते हैं, सत्य की अपरिहार्य शर्त है जीना, स्व हो कर जीना, आत्म हो कर जीना, अपरावलम्बी हो कर, निरपेक्ष हो कर जीना ।

शान्ति पर्व में भूख से व्याकुल विश्वामित्र की कहानी आती है । वह अकाल में अन्न की तलाश में एक झोंपड़े में पहुँचते हैं । वहाँ कुत्ते के जाँघ का हिस्सा ताजा कटा रखा है, वह भूख के मारे उसे ले कर चलने को उद्यत होते हैं तो झोंपड़े का मालिक चाण्डाल उन्हें धर्म-अधर्म की बहस में घसीटता है, कुत्ते का मांस अभक्ष्य है, क्यों अपने धर्म का नाश करते हैं और क्यों मेरे धर्म का ? विश्वामित्र ने उत्तर दिया, जिस किसी विशेष कर्म से समर्थ व्यक्ति मरने से जी उठे, वह कर्म करते हुए धर्म का आचरण करे, क्योंकि जीवन मरण से अधिक श्रेयस्कर है, जीवन जीते हुए ही तो धर्म प्राप्त किया जाता है । जैसा करने से जीवन निर्वाह हो, उसे अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए ।

येन येन विशेषेण कर्मणा येन केनचित् ।
अभ्युज्जीवेत्सीधमानः समर्थो धर्ममाचरेत् ॥
(शा० प० १४१।४३)

यथा यथैव जीवद्धि तत्कर्त्तव्यमहेलया ।
जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन् धर्ममवाप्नुयात् ॥
(शा० प० १४१।६५)

चाण्डाल का निहित स्वार्थ उसे और मुखर धर्मवक्ता बनाता है, मैं आपको यह आपका अभक्ष्य पदार्थ कैसे दूँ, और कैसे तो अपने भोज्य की अपेक्षा करूँ, मैं तुम्हें यह देनेवाला और तुम इसे लेनेवाले दोनों पाप लोक में अवलिप्त होंगे—

नैवोत्सहं भवितो दातुमेनां
नोपेक्षितुं ह्रियमाणं स्वमन्नम् ।
उभौ स्यावः पापलोकावलिप्तो
दाता चाहं ब्राह्मणस्त्वं प्रतीच्छन् ॥
(शा० प० १४१।८५)

विश्वामित्र ने कहा—मैं यह पाप कर लूँगा क्योंकि यह करके महापवित्र जीवन जी सकूँगा और पवित्र जीवन जीते हुए धर्म की पूर्ति कर लूँगा ।

जीवंश्चरिष्यामि महापवित्रम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्ततः चाण्डाल ने कुत्ते का मांस दिया। विश्वामित्र ने वह मांस अकेले नहीं खाया, उसे यथानियम सबमें बाँटने बैठे—देवताओं में, पितरों में, सर्वभूतों में और इतने में वृष्टि शुरू हो गयी। पूरे देश का अकाल चला गया। युधिष्ठिर घबरा उठे यह कहानी सुन कर, क्या ऐसा अश्रद्धेय, ऐसा घोर, ऐसा अनृत धर्म करके भी पवित्र रहा जा सकता है? भीष्म ने फिर समाधान किया। एकांगी शास्त्र से धर्म का निश्चय नहीं होता, न दुर्बल चित्त से होता है।

> नैवशास्त्रेण धर्मेण राज्ञा धर्मो विधीयते।
> दुर्बलस्य कुतः प्रज्ञा पुरस्तादनुपाहृता॥
> (शा० प० १४२।७)

समस्त शास्त्रों के बड़े गहरे अनुध्यान से ही धर्म की प्रज्ञा आती है।

इस प्रकार जीवन की पवित्रता ही महाभारत के महासत्य की पीठिका है और उसकी एक ही कसौटी है, आनृशंस्य, नृशंस न होने का भाव, अपने भीतर के नरत्व का अपघात न करने का भाव, अर्थात् अपने भीतर नारायण के साथ विश्वासघात न करने का भाव। महाभारत में अहिंसा शब्द या करुणा शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर मिलता है, सामान्य धर्मों की परिगणना में अहिंसा भूतानुकम्पा जैसे शब्द भी मिलते हैं, पर जब-जब सत्यवादी युधिष्ठिर की परीक्षा होती है, उनके सत्यनिष्ठ धर्म की परीक्षा होती है, तब-तब आनृशंस्य शब्द ही प्रयुक्त होता है, इसी से मैं इसे महाभारत का एक केन्द्रभूत शब्द मानता हूं।

पहली बार युधिष्ठिर की परीक्षा होती है, चारों भाई यक्ष का उत्तर न दे कर अभिशप्त जल पी कर निष्प्राण हो जाते हैं। युधिष्ठिर अपने उत्तर से सन्तुष्ट कर देते हैं तो यक्ष उनसे कहता है, तुम किस भाई को जीवित देखना चाहोगे, मैं एक को प्राणदान दे सकता हूँ, युधिष्ठिर निःसंकोच कहते हैं, मेरी विमाता माद्री के छोटे लड़के सहदेव को जिला दें। यक्ष के बार-बार कहने पर भी वह अपने सहोदर भाइयों में से किसी की प्राण-रक्षा की बात नहीं सोचते। केवल यही कहते रहते हैं, **आनृशंस्यं परो धर्मः**, मेरे भीतर का मानुष भाव मर जायेगा, यदि मैं पहले दिवंगत विमाता के प्रति अपने दायित्व को भूल जाऊंगा।

युधिष्ठिर की दूसरी परीक्षा होती है, चैत्ररथ गन्धर्व ने कौरवों को बाँध कर रखा है, उनका वध करना चाहता है। युधिष्ठिर सुनते हैं और भाइयों से कहते हैं, जाओ, उन्हें छुडा दो, भाई इस बात को नहीं समझ पाते। युधिष्ठिर कहते हैं, हमें अपने प्रति किये गये अन्याय का प्रतिकार स्वयं लेना उचित है, यह कायरता होगी, यह नृशंसता होगी कि चैत्ररथ के हाथों उनका वध करा दें, क्योंकि वे हम ही तो हैं—**वयं पंचाधिकं शतम्**, पाँच और सौ मिल कर ही तो हम होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युधिष्ठिर की दुर्बलता की बात बहुत की जाती है, जिन लोगों के मन में महाभारत का एकांगी चित्र है, वे दुर्योधन और कर्ण के लिए बहुत व्याकुल हो जाते हैं और श्रीकृष्ण को छली, युधिष्ठिर को छलजीवी भी कहने लगते हैं। पर वे इस प्रसंग की उपेक्षा कर जाते हैं। युधिष्ठिर कौरवों का नाश चाहते तो यह अवसर क्यों खोते? विराट के नगर में भी कौरव परास्त होते हैं, वन में तप का जीवन व्यतीत करने वाले पाँच वीरों के तेज के आगे वे सभी आहत हो कर मरने-मरने को होते हैं। युधिष्ठिर तब भी सोचते हैं, हम अज्ञातवास में हैं, ये आक्रामक हैं सही, इस समय, पर आक्रमण विराट पर है, हम विराट और उनकी गौवों की रक्षामात्र के उत्तरदायी हैं। हम इनसे पाण्डव के रूप में खुले तौर से निबटें, यही ठीक होगा। वे नाश नहीं चाहते और यदि कौरवों का नाश अन्याय के प्रतिकार में हो जाता है तो युधिष्ठिर की युद्ध लिप्सा से नहीं। यह अवश्य है, वह अर्जुन की तरह युद्ध के पूर्व व्यामोह में नहीं पड़ते क्योंकि युद्ध उनके बावजूद उपस्थित हो गया है, उसमें वह स्थिर रहते हैं। युद्ध समाप्त हो जाता है और युधिष्ठिर को विषाद होता है, मैं अपने स्वजनों के रक्त से दिग्ध अन्न कैसे ग्रहण करूँ, किसके साथ यह राज्य भोगूँ, जिनके साथ भोगना था वे चले गये। युधिष्ठिर के मन की व्यथा एक बहुत बड़े मन की व्यथा है, उसकी चर्चा आगे होगी। अभी तो इतना ही प्रासंगिक है कि युधिष्ठिर की जीत जीत नहीं लगती, हार लगती है। चारों भाई उन्हें समझाते हैं, द्रौपदी समझाती है, व्यास स्वयं समझाते हैं, नारद समझाते हैं, तब जाकर राज्याभिषेक स्वीकार करते हैं पर तब भी उनके मन में कहीं कलंक है और तब श्रीकृष्ण उन्हें भीष्म के पास ले जाते हैं, युधिष्ठिर को उपदेश स्वयं न दे कर भीष्म से दिलवाते हैं, उस भीष्म से दिलवाते हैं जो युधिष्ठिर के पितामह हैं, जो युधिष्ठिर की सेना का आधा से अधिक भाग युद्ध में नष्ट कर चुके हैं, जो बाणों की शय्या पर पड़े हुए हैं, जो पिता को केवल इतना ही वचन नहीं देते कि मैं राज्य का अधिकार नहीं लूंगा; वचन देते हैं कि मैं विवाह ही नहीं करूँगा, मेरे बच्चे न होंगे, मेरे कारण या मेरी सन्तान के कारण कोई विवाद कभी नहीं खड़ा होगा। इतनी भीष्म-प्रतिज्ञा के कारण ही उनका नाम भीष्म पड़ जाता है। पिता का दिया हुआ नाम देवरात एकदम विस्मृत हो जाता है वह दुर्योधन के अन्न से पलते हैं, बहुत-सी अनीति उनके सामने होती है, चुप रहते हैं, अर्थ के दास बने रहते हैं और भीतर-भीतर चिरते रहते हैं। श्रीकृष्ण भीष्म की बाहरी-भीतरी सारी वेदना हर लेते हैं और उनसे युधिष्ठिर को उपदेश देने के लिए कहते हैं, क्योंकि वह जानते हैं युधिष्ठिर जैसे व्यक्ति को उपदेश वही दे सकता है जो शरशय्या पर मृत्यु की शान्त भाव से प्रतीक्षा कर रहा हो, अन्तिम क्षण तक जी रहा हो। भीष्म ने कहा कि आप स्वयं क्यों नहीं उपदेश देते? श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं, इस पर किसी को क्या विस्मय होगा! मैं यश और श्रेय का मूल हूँ, मुझ से ही सभी भाव—सद् हों या असद्—अभिनिर्वृत्त होते हैं, उद्भूत होते हैं, मैं तुम में अपनी विपुला बुद्धि अर्पित करता हूँ, जिससे तुम्हारी बात हो कर लोक में धर्म फैले और तुम्हारी बात युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में उठ कर फैले। और लोक में यह बात ऐसे फैले जैसे कि यह वेद हो। धर्मसाधक मनुष्य के प्रश्न के धर्मसाधक मनुष्य द्वारा दिये गये उत्तर के रूप में धर्म प्रभूत हो, मैं यह चाहता हूं। (शा० प० ५४)

भीष्म ने तब युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए आमन्त्रण दिया। जो समस्त यशस्वी धर्माचरण करने वाले कौरवों में अद्वितीय है, वह मुझ से धर्म की बात पूछ ले। जो सत्य-नित्य है, क्षमा-नित्य है, ज्ञान-नित्य है, अतिथि-प्रिय है. जो नित्य सत् ही देता है, वह मुझसे धर्म की बात पूछ ले—

सर्वेषां दीप्तयशसां कुरुणां धर्मचारिणाम्।
यस्य नास्ति समः कश्चित् स मे पृच्छतु पाण्डवः।।
सत्यनित्यः क्षमानित्यो ज्ञाननित्योतिथिप्रियः।
यो ददाति सतां नित्यं स मे पृच्छतु पाण्डवः।।

(शा० प० ५५)

युधिष्ठिर भीष्म से राजधर्म, समस्त वर्णों और आश्रमों के धर्म, सामान्य धर्म, विशेष धर्म और मोक्ष धर्म के बारे में तरह-तरह के प्रश्न करते हैं, वे सभी प्रश्न छेड़ते हैं जो उनके भीतर छिड़ते रहे हैं और जिनके छिड़ते रहने से ही युधिष्ठिर निरन्तर कसौटी पर अपने को कसते रहे हैं। ऐसे धर्मात्मा युधिष्ठिर की अन्तिम परीक्षा होती है स्वर्गारोहण पर्व में, जब उनसे कहा जाता है कि आप मनुष्य शरीर से दिव्य लोक में प्रवेश करें। वह आग्रह करते हैं, मैं अकेले कैसे प्रवेश करूं, मेरे पीछे-पीछे यह कुत्ता आया है, उसको भी प्रवेश मिले तो मैं प्रवेश करूं, युधिष्ठिर किसी भी प्रकार अपने आग्रह से विचलित नहीं होते, इतने में कुत्ता गायब हो जाता है, धर्मराज कहते हैं, यह तुम्हारी अन्तिम परीक्षा थी, तुम में कितना आनृंशस्य भाव है, कितना मानुष भाव है। तुम परीक्षा में खरे उतरे। वह कुत्ता तो मैं था, वह यक्ष भी मैं था, तुम भी मेरी ही आत्मा हो, धर्म ही धर्म की वास्तविक परीक्षा लेता है।

मैंने इसीलिए महाभारत की यह प्रतिज्ञा पहले दुहरायी थी कि इसका सत्य अमृत है, यह कभी मरता नहीं, यह हमेशा जीवित रहता है, यह परीक्षित होता है; यह संशित होता है, यह क्लिष्ट होता है, पर मरता नहीं। यह ऋत रूप है, गति रूप है, स्थिति रूप नहीं है, यह चरिष्णु है क्योंकि 'कृतः सम्पद्यते चरन्' क्योंकि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कृतयुग या सत्ययुग तो चलते रहने वाले का नाम है। इस सत्य का विरोध असत्य से नहीं, अनृत से है, क्योंकि सत्य का अभाव कहीं है ही नहीं, असत्य की अपने आप कोई सत्ता ही नहीं है। असत्य सापेक्ष सत्ता है। सत्य स्थित हो जाय, सचाई जड़ हो जाय, जीवन की गति से विलग हो जाय, धार से किनारे हो जाय तो असत्य को अवसर मिल जाता है। सम्पूर्ण विश्व और सम्पूर्ण विश्व की चिति सत्य है और अनृत अन्धकार है, अधर्म है, दुःख है, निरय है, अगति है।

सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजाः।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति।
अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसावृता॥

(शा० प० १९०।१-२)

सत्य की सम्पूर्णता का श्वास-श्वास में अनुभव होता रहता है। जब सत्य-ऋत में द्वन्द्व नहीं होता, पर जब वह ऋत का विरोधी हो जाता है, जीवन-यात्रा का प्रतिवन्धक हो जाता है तब सत्य अनृत नहीं रह जाता, अमृत नहीं रह जाता, वह हेय हो जाता है, त्याज्य हो जाता है। विकर्ण ने जो नारी के स्वत्व की माँग की, वह अमृत सत्य की, ऋत सत्य की माँग थी, विजड़ित व्यवस्था के त्याग की, अनृत के त्याग की, झूठ के त्याग की माँग थी।

इस ऋत सत्य को महाभारतकार ने धर्म माना, इसीलिए इस पर बल दिया कि धर्म केवल परिपाठ से, आम्नाय से, ग्रन्थ से नहीं जाना जा सकता—

न शक्यः परिपाठेन शक्यो भारत वेदितुम्।

(शा० प० २६१।३)

साधारण स्थिति का धर्म अलग है, आपात्काल का धर्म अलग है और आपदायें अनन्त हैं, धर्म को ग्रन्थ में कैसे बाँधा जा सकता है।

अन्यो धर्मः समस्थस्य विषमस्थस्य चापरः।
आपदस्तु कथं शक्याः परिपाठेन वेदितुम॥

(शा० प० २६१।१४)

धर्म की इस अलक्ष्य सूक्ष्मता में प्रमाण बच जाता है सदाचार, सत्य का आचरण, सत्य की व्यापकता की आचरण की परीक्षा। वह परीक्षा इस प्रकार होती है, तुम किसी से डर कर या भययुक्त हो कर कुछ कर रहो और तुमसे कोई डर कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या भययुक्त हो कर जुड़ा हुआ है, तुम जो कर रहे हो वह लोक यात्रा का निर्वाहक है या नहीं, सर्वभूतहित का साधक है या नहीं :

यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।
यदा न कुरुते पापं सर्वभूतेषु पापकं ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।
(शा० प० २६२।१५-१६)

सत्य का साहस ही तुलाधार वैश्य से यह कहला सकता है कि यह जो अच्छा माना जाता है, यह दो, यह दो, इसी से स्तैन्थ या चोरी की वृत्ति जगती है, इसी से विकर्म, विपरीत कर्म प्रादुर्भूत होते हैं। दान-दक्षिणा की प्रशंसा में एक खोट है।

इदं देयमिदं देयमिति चायं प्रशस्यते ।
अतः स्तैन्थं भवति विकर्माणि चाजाजले ।।
(शा० प० २१३।७)

वस्तुत: देना हो तो दाता न रहे, यज्ञ करना हो तो कर्त्ता न रहे, केवल दान रहे, केवल कर्त्तव्य रहे। ब्रह्म ही देता है ब्रह्म ही दान है, ब्रह्म ही ग्रहीता है, यह भाव ही श्रद्धा है, यही चरम नैतिकता है, शुचिता भी तभी शुचिता है जब वह श्रद्धा से संयुक्त हो—

किं तस्य तपसा वार्यं कि वृत्तेन किमात्मना ।
श्रद्धामयोवं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।
(शा० प० २६४।१६)

पुरुष उतना ही पुरुष है जितना श्रद्धामय है और श्रद्धा का अर्थ ही है वाक्, मन और बाह्य कर्म का एक होना, क्योंकि श्रद्धा सूर्य की पुत्री है, वह सावित्री भी है; प्रसवित्री भी है; सृष्टि रचती है, सृष्टि रचाती है और सृष्टि को सुलझाती भी है। कोरा कर्म, कोरा यज्ञ, कोरा तप, कोरी अहिंसा, ये सब श्रद्धा को मारती हैं और तब मरी श्रद्धा नर को मारती है।

महाभारत में अनेक स्थल हैं जहाँ छोटे धर्म और बड़े धर्म के निर्णय का प्रश्न उठता है और इन अनेक स्थलों में बड़े धर्म की पहचान बड़े सुचिन्तित और गहरे विवेक से की गयी है। एक कथा आती है। गौतम ने अपने पुत्र चिर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारी से कहा कि तुम्हारी माँ ने धर्म का अतिक्रमण किया है, इसका वध कर डालो और स्वयं वन में जप-ध्यान करने चले गये। चिरकारी चिरकाल तक विमर्श करने वाले प्राणी थे, सोचने लगे, पिता की आज्ञा का पालन पुत्र का धर्म है, माता की रक्षा स्व का धर्म है, मैं पुत्र के रूप में धर्म का पालन करूँ या स्व के रूप में (पितुराज्ञा परो धर्मः स्वधर्मो मातृरक्षणम्) और निर्णय लेते हैं कि भर्त्ता तब तक भर्त्ता है, जब तक भरण करता है, पति तब तक पति है जब तक रक्षा करता है, उसकी दोनों भूमिकाएँ न रहें तो कैसा भर्त्ता, कैसा पति (भरणाद्धि स्त्रियो भर्त्ता पात्या चैव स्त्रियः पतिः। गुणस्यास्य निवृत्तौ तु न भर्त्ता न पुनः पतिः)। स्त्री का कोई अपराध नहीं होता, पुरुष ही अपराधी है, क्योंकि वही प्रथम प्रवर्त्तक है। इस बीच गौतम ने भी एकाग्र चित्त से सोचा तो लगा कि क्रोध में मृत्यु का आदेश देना उचित नहीं हुआ। वह भागे-भागे आये, देखा पत्नी जीवित है। उन्होंने चिरकारी को आशीर्वाद दिया कि सांसारिक जीवन में उद्वेग या शीघ्रता में निर्णय लेना ठीक नहीं होता, मनुष्य को गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए कि वस्तुतः यह राग उचित है, यह दर्प उचित है, यह मान उचित है, यह द्रोह उचित है, यह सचमुच पाप है, यह अप्रिय होते हुए भी कर्त्तव्य है या नहीं, विशेषकर के बन्धुओं, मित्रों, भृत्यों और स्त्रियों के ऐसे अपराध के बारे में निर्णय करते समय जो स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हैं, बहुत विचार-विमर्श करना चाहिए।

> रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि।
> अप्रिये चैव कर्त्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते॥
> बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च।
> अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते॥
>
> (शा० प० २६६)

धर्म का स्वरूप ही चिर है, वह धीरे-धीरे चलता रहता है, दौड़ता नहीं, भागता नहीं, पर जाँचते चलता है, इसलिए उससे तात्कालिक अभ्युदय नहीं होता, उसमें कोई चमत्कारी बात नहीं होती, अपने परिजन भी धर्म का आचरण करने वाले से खीझते रहते हैं। धर्म धैर्य देता है तो अकेलापन भी देता है, युधिष्ठिर इसके सबसे बड़े प्रतिमान हैं, परन्तु धर्म आश्वासन है, संचरणशील छाया है बादल की, नष्ट नहीं होंगे। अधर्म से अभ्युदय होगा, शत्रु और शीघ्र परास्त होंगे, दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होगी, पर नाश होगा तो समूल नाश होगा—

> अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
> ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्म मृत्यु नहीं है क्योंकि वह सत्य से निरन्तर शोधित होता रहता है; ऋत से, अमृत से निरन्तर ऊँचता रहता है और वह सत्य से अत्रव पर विजय प्राप्त की जाती है (सत्येनैवान्तकं जयेत्), सत्य ऋत में रहता है, और अमृत सत्य में। यह पहचान कि इसी शरीर में मृत्यु है, इसी में अमृत है, सत्य की सही पहचान है।

अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम्।
मृत्युरापद्यते मोहात्सत्ये नापद्यते मृतम्॥
(शा० पा० २७८।२९-३०)

इस सत्य के ही द्वारा विरुद्ध दिखने वाले धर्मों में अविरोध देखा जा सकता है, क्योंकि सत्य यही है कि विरोध नहीं है, केवल तारतम्य है, तर और तम श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम का अन्तर है और वैसे तो श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतम दोनों की कसौटी लोकयात्रा है, पर श्रेष्ठतम का निर्णय लेते समय अपने को एकदम छाँटकर अलग कर देना होता है, सबकी ओर से सोचना पड़ता है और तब विकल्प नहीं रह जाता। तब एक ही बचता है, वही अद्वितीय धर्म है।

श्रीकृष्ण इस अद्वितीय धर्म-द्रुम की जड़ हैं, यह कहने का विशेष तात्पर्य है, श्रीकृष्ण ने 'प्राणसंशितमसि' (तुम्हारे प्राण चिर रहे हैं) की धारणा की थी। वह योगेश्वर थे, वह पृथ्वी रूप मधु के आस्वादक थे, वह सर्वमय थे, वह समस्त भूतों में रहने वाले वासुदेव थे, वह सबको आकृष्ट करने वाले, सबको जानने वाले, सबको उत्पादक बनाने वाले, सबको भावित करने वाले और सब आवरणों को, छलों को, दुरावों को हटाने वाले थे, इसीलिए कृष्ण थे। कृष् का अर्थ भू या होना है, जोतना है, खींचना है, ण का अर्थ निवृत्ति है, आवरण को हटाया जाना है। श्रीकृष्ण सर्वसमाधिभाव से ही रस पा कर युधिष्ठिर रूपी धर्मद्रुम बढ़ता है और इसी से इसे पा कर महाभारत भी बढ़ता है। श्रीकृष्ण महाभारत के नायक नहीं हैं, संचालक भी नहीं हैं, वह इसके मुख्य पात्र नहीं हैं, तो भी वह समस्त महाभारत पर छाये हुए हैं, कभी विराट् बन कर कभी बहुत लघु बन कर, कभी मनुष्यों में सबसे पूजनीय बन कर, कभी अतिथियों की जूठी पत्तल बटोरने का सबसे हीन माना जाने वाला काम अपने जिम्मे लेकर, कभी महाभय बन कर कभी अभय बन कर, महाभारत के कठिन प्रसंगों में विपत्तियों में वह उपस्थित हो जाते हैं, फिर यकायक वहाँ से खिसक जाते हैं। वह नर की भूमिका में बस इतना ही हस्तक्षेप करते हैं कि वह नरत्व का भाव न भूले, नर की इस चिन्ता के कारण ही वह नरोत्तम हैं। ऐसे श्रीकृष्ण महाभारत में भीतरी सत्य हैं। वह किसी के साथ नहीं हैं और सब के साथ हैं, युद्ध में वह विचित्र प्रकार से सम्मिलित हैं, निरस्त्र स्वयं अर्जुन के सारथि बन कर पाण्डवों के साथ और अपनी सम्पूर्ण सेना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुर्योधन को दे कर शस्त्रबल की सहायता के द्वारा कौरवों के साथ। इतने बड़े जन-नाश के वाद, जन-नाश ही नहीं स्वजन-नाश के बाद, वह अनुद्विग्न रहते हैं क्योंकि उन्हें सब की चिन्ता है, कुछ की नहीं। सब के हित में कुछ का मद झड़ जाय तो झड़ जाय, अपने सगे से सगे लोगों को दुःख हो, हो, अर्जुन जैसे अर्पित भक्त दस्युओं के आगे अनुभाव होकर लुट जायें तो लुट जायें, कोई बात नहीं; पर वह रह जाय जिससे जीवन चलता है। नरों के भीतर लहराते हुए भावसागर में नारायण सोते रहते हैं, उन्हें जगाने वाला नरोत्तम भाव रह जायें, सत्य न मरने पाये, धर्म का बीज न नष्ट होने पाये। बस, उन्हें इसी बात की चिन्ता अपनी लीला के संवरण के क्षण में रहती है। इसी से उद्धव को वह बदरिकाश्रम भेज देते हैं—वहाँ से वासुदेव भाव प्रभृत हो गंगा की धारा की तरह। भीष्म ने इसी लिए श्रीकृष्ण की स्तुति इन शब्दों में की कि 'सब जिसमें है, सब जिससे है, जो सब है, और जो सब ओर है, जो सबमें है, उन सर्वात्मा को नमस्कार करता हूँ।

यस्मिन्सर्वं यतःसर्वं यः सर्वः सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वभयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः॥

संजय ने माना है कि केशव ही कालचक्र, जगच्चक्र, और युग चक्र को आत्म-योग से परिवर्तित करते रहते हैं:

कालचक्रं जगचचक्रं युगचक्रं च केशवः।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्त्तयतेनिशम्॥

(उ० प०)

धृतराष्ट्र ने भी एक क्षण को ही सही यह पहचाना कि श्रीकृष्ण सनातनतम ऋषि हैं, वाक् के समुद्र (वाचा समुद्रं) हैं और यतियों के पूर्ण कलश हैं। सब उन्हें कभी न कभी पहचानते हैं क्योंकि वह सब में स्फुरित हैं। सचाई सबको कभी न कभी दिखती है, कोई देख कर सचाई ग्रहण करने का यत्न करता है और कोई उसको देख कर, पहचान कर उस का तिरस्कार, उस की उपेक्षा करता है। वह उपेक्षा की उपेक्षा करते हैं, आदर की भी उपेक्षा करते हैं, केवल पहचान की अपेक्षा करते हैं।

व्यास देव का **महाभारत** वासुदेव भाव, सात्वत भाव, कृष्ण भाव, निठुर और करुण भाव की पहचान का काव्य है, इसीलिए कोई इस भाव को जो चाहे नाम दे, अवतारवाद माने, न माने, इस भाव के सनातन प्रवाह से अपने को हमेशा किनारे नहीं रख सकता। कभी न कभी उसे अवशता होती ही है कि इस भाव में डूबे, इसमें तिरे, इसके साथ चले। यह भाव बन कर मानुष सही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थों में मानुष बनने का संकल्प ले सकें, न देव बनें, न असुर—दोनों स्वयं मानुष भाव के अपेक्षी हैं। न मानुषात्परतरं किंचिदस्ति, का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है, उसका अर्थ यह है मानुष भाव से अधिक दूसरे के लिए सोचने वाला, दूसरा हो कर सोचने वाला भाव कोई नहीं है, मानुष भाव सबको स्वीकार करने वाला भाव है, सर्वजीवन की आकांक्षा करने वाला भाव है, वह भाव एकान्ततः सर्वभाव के लिए अर्पित है। नारायण के लिए अर्पित है। उसका यह अर्पण ही उसको नरोत्तम बनाता है। कृष्ण को इतिहास पुरुष मानें न मानें (न मानें तभी अधिक अच्छा, क्योंकि तभी पूर्णतर पुरुषोत्तम हैं), उस रूप में महाभारत के लिए कृष्ण उतना महत्त्व नहीं रखते, उन्हें भाव पुरुष मनाये बिना महाभारत नहीं मानता, क्योंकि वे ही अमृत सत्य की दीक्षा हैं, वही अमृत सत्य की साधना हैं, और वे ही अमृत सत्य की चरम सिद्धि भी हैं, जीवन भर लोकार्पित रहकर मरण के क्षण में शुद्ध रूप से स्वार्पित—स्व से लोक और लोक से स्व—यह वृत्त ही तो अमृत सत्य की साधना का अविराम पथ है, वृत्त पूरा होते ही नया वृत्त शुरू हो जाता है। सिद्धि साधना का संकल्प बन जाती है, कभी किसी ऐतिहासिक उद्देश्य की आपूर्ति नहीं होती, सच कहें तो ऐतिहासिक उद्देश्य कुछ है ही नहीं, कुछ है भी तो बहुत क्षुद्रतर उद्देश्य है—क्या तो उसकी पूर्ति, क्या तो उसकी अपूर्ति। सत्य के संचरणशील रूप में इतिहास एक बुद्बुद् है, लहर भी नहीं। महाभारत इतिहास का काव्य है, इतिहास नहीं और आज के अर्थ में तो कतई नहीं, वह निरन्तर सोचने और नये सिरे से सोचने के लिए पग-पग पर उकसावा देता है, यही उसकी चरम चरितार्थता है। वह सोचता मनुष्य के बारे में हो, उसके सम्बन्धों के बारे में हो, उसकी सामाजिक व्यवस्था के बारे में हो या उसके भीतर के द्वन्द्वों के बारे में हो, प्रत्येक देश-काल में नये सिरे से शुरू होता है। महाभारत इस सत्यशोधन की एक अपरिहार्यता को नियति नहीं मानता, लाचारी नहीं मानता, इसे सत्य का ही स्वभाव मानता है, जैसे छाया का बदलता हुआ रूप प्रकाश का ही स्वभाव होता है।

अभी मैं भीष्म की श्रीकृष्णास्तुति से एक श्लोक पढ़ कर विराम लेता हूँ। उस सत्य को नमन करता हूँ जो अमृत भाव या जिजीविषा से उत्पन्न होने वाले ऋत से सत् का सेतु निर्मित करता है और धर्म-अर्थ के व्यवहार को उस सेतु निर्माण का अंग बनाता है, ठाठ बनाता है।

यस्तनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना।
धर्मार्थ व्यवहाराभ्यां तस्मै सत्यात्मने नमः॥

(शा० प० ४७।४९)

□

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा अध्याय

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि

महाभारत की पीड़ा

पहले अध्याय में रस से प्रारम्भ करके महाभारत के सत्य तक में पहुँचा था, आप को लगा होगा रस की बात मैं भूल गया। ऐसी बात है नहीं, सम्पूर्ण महाभारत पढ़ लेने पर आज भी मेरे लिए निर्णय करना कठिन है, कि इस ग्रंथ का मुख्य रस शान्त है, या करुण। मैंने शान्त रस के पक्ष में अनेक तर्क दिये, वे तर्क मेरे नहीं हैं, कुछ तो महाभारत के प्राचीन टीकाकारों के हैं, कुछ काव्यशास्त्रियों के और कुछ पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी जैसे स्वाध्यायरत मनीषियों के हैं। मैं जब लौकिक गृहस्थ की दृष्टि से सोचता हूँ तो मुझे महाभारत के केन्द्र में करुणा ही लहराती दिखायी देती है, वह शम की अंगभूत नहीं लगती, उलटे शम ही करुणा का अंगभूत लगता है। व्यास देव पांडवों के प्रति दुर्योधन और उसके साथियों का मनोभाव देख कर बहुत चितिन्त होते हैं। वह आगे इसका परिणाम देख कर उद्विग्न होते हैं और जब लाक्षागृह में पांडवों के जल भरने का समाचार हस्तिनापुर पहुँचता है तो वह अपनी माँग सत्यवती से कहते हैं कि तुम अपनी दोनों विधवा बहुओं को—अम्बिका और अम्बालिका को लेकर वन में तप करने चली जाओ, मैं देख रहा हूँ घोर विनाश उपस्थित है, तुम उसे झेल नहीं पाओगी। ऐसे समय आ रहे हैं, जब लगेगा कभी अतीत में सुख मिला ही नहीं, सुख की स्मृति तक विलुप्त हो जायेगी। दारुण दुःख ऐसे उपस्थित होगा, जैसे दाँव पर कोई शत्रु फिर दबोचने के लिए लौट आया हो, अब मौका मिला है, बदला लेने का। इस प्रतिहिंसा के आवेग से भर कर दुःख सामने आयेगा कि तुमने मेरी उपेक्षा की थी न, अब लो मैं भोग भोगाता हूँ। तब भविष्यत् ऐसा लगेगा कि पापतर कर्मों का फल है, कल की अपेक्षा आने वाला कल और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े पापों का पारिपाक बन कर आ रहा है। इस त्रैकालिक दारुण दुःखबोध में सारी सम्भावनायें नष्ट हो जायेंगी। यह उर्वर धरती, यह वत्सला धरती, यह उदार रमणीय धरती एकदम बंजर हो जायेगी, उजाड़ हो जायेगी, जैसे किसी निस्सन्तान नारी का यौवन ढल जाय, या होने की सम्भावना न रह जाय, उसका अस्तित्व चुक जाय।

असम्प्राप्तसुखाः कालाः प्रत्युपस्थित दारुणाः ।
श्वः श्वः पापीयदिवसाः पृथिवी गतयौवना ।।

ईर्ष्यावश, मोहवश जो अन्याय बुद्धि घर कर लेती है उसका दुःखद अन्त व्यास देखते हैं, ऊपर से अनुद्विग्न रहते हैं अवश्य पर भीतर से पर्याकुल रहते हैं कि मनुष्य को क्या हो गया है, वह किसी के धर्म्य न्याय्य प्राप्य को क्यों छीनना चाहता है। धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर व्यास के ही तो पुत्र हैं, दो काशिराज की दो पुत्रियों से उत्पन्न, तीसरे दासी से उत्पन्न। उनके पुत्रों के बीच कलह हो, उस कलह से विनाश हो, इसकी पीड़ा सबसे अधिक उन्हें होनी स्वाभाविक है। उनकी पीड़ा का अगर कोई साझीदार है तो दासी-पुत्र विदुर हैं। वह धृतराष्ट्र के सहोदर हैं, धृतराष्ट्र के मन्त्री हैं, धर्म के अवतार हैं, दुर्योधन की अनीति से दुःखी हैं, बार-बार प्रयत्न करते हैं कि विग्रह की स्थिति टल जाय, पांडवों को उनका प्राप्य मिल जाय। और जब विग्रह दुर्निवार हो जाता है, तो शस्त्र त्याग कर देते हैं और युद्ध से विरत हो जाते हैं। युद्ध समाप्ति पर वे धृतराष्ट्र को समझाते और सान्त्वना देते हैं कि अकेले तुम्हारे ही पुत्र नहीं मारे गये, पाण्डवों के पुत्र भी मारे गये हैं, यह तुम्हारा अकेले का दुःख नहीं है, तो क्यों नहीं तुम इसे सबका दुःख मान कर सबके लिए चिन्ता करते? शायद तब यह दुःख तुम्हारे व्यक्तित्व को नया आकार दे देगा, तुम्हारे मोहग्रस्त विजड़ित व्यक्तिपन को बड़े दुःख की आँच लगेगी तो वह मन कुछ खुल सकेगा, फैल सकेगा, तब युधिष्ठिर तुम्हारे लिए सभी मानों में पुत्र हो सकेंगे। तुम प्राण भी दो, यदि यह अकेले का दुःख है तो नहीं जायेगा, तुमसे चिपका रहेगा।

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्त्तते ।।

धृतराष्ट्र कुछ अपने को सँभालते हैं, फिर जब पुत्रों के दाह संस्कार की बात उपस्थित होती है तो पुत्र शोक उन्हें विह्वल कर देता है, और वह कोसते हैं मनुष्य-योनि में जन्म को : क्यों इतनी ममता होती है मनुष्य योनि में! शादी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्याह करो, बच्चे पैदा करो, कुटुम्ब बढ़ाओ, सम्पत्ति कमाओ, बच्चों की मृत्यु हो, सम्पत्ति नष्ट हो, कुटुम्ब नष्ट हो तो विष की आग में जलो। क्या विडम्बना है, इस मनुष्य जन्म को धिक्कार है, जिसको पा कर इतना सन्ताप करना पड़ता है।

धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुषेषु परिग्रहे ।
यतो मूलानि दुःखानि सम्भवन्ति मुहुर्मुहुः ।।
पुत्रनाशेऽर्थनाशे च ज्ञातिसम्बन्धिनामथ ।
प्राप्यते सुमहद् दुःखं विषाग्निप्रतिमं विभो ।।

(स्त्री० प० ८१६-७)

धृतराष्ट्र का दुःख घोर प्रतिहिंसा में रूपान्तरित हो कर कुछ शान्त हो जाता है, जब वह भीम को आलिंगन के बहाने आमन्त्रित करते हैं और उनके सामने लोहे का भीम जो दुर्योधन ने बनवा कर अपने द्वार पर रखा था, दिया जाता है। धृतराष्ट्र के क्रोध में ऐसी आसुरी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह लोहा धृतराष्ट्र की बाँहों में पिस कर चूर-चूर हो जाता है। क्रोध शान्त हो जाता है, पर वृद्ध धृतराष्ट्र के मुँह से खून गिरने लगता है क्योंकि छाती का जोर भी उन्होंने लगाया था, और वह फूल लहराते हुए कटे पारिजात के पेड़ की तरह जमीन पर भहरा पड़ते हैं। उनका सारा आवेग मर जाता है, उनका व्यक्तित्व ही खण्डित हो जाता है—

ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ।
प्रपुष्पिताग्रशिखरः पारिजात इव द्रुमः ।।

होश आने पर धृतराष्ट्र को मन में ग्लानि होती है कि मैंने भीम को औचक में ही बाँहों में भर कर मार डाला। विदुर और श्रीकृष्ण उन्हें समझाते हैं कि आपका क्रोध अनुचित था। पर आप आश्वस्त हों, भीम बच गये। इसके बाद गान्धारी का शोक उमड़ता है और वह अनुतप्त होकर पाण्डवों को शाप से दग्ध करने को होती हैं कि व्यास ध्यान लगाकर उनके मन का अभिप्राय देख लेते हैं और शाप से रोकने पहुंच जाते हैं—क्या करने जा रही हो बेटी, तुमसे जब-जब दुर्योधन लड़ाई के दिनों में प्रणाम करने गया, उसे जय का आशीर्वाद दे कर यही कहा 'यतो धर्मस्ततो जयः' जिधर धर्म होगा, उधर ही जीत होगी। तुम्हारी भीतरी सचाई ही धर्मराज युधिष्ठिर की जीत बनी है। तुम अब अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सचाई को अन्यथा करना चाहती हो, अपने धर्म का स्मरण करो और क्रोध पर काबू पाओ।

स्वं च धर्मं परिस्मृत्व वाचं चोक्तां मनस्विनि।
कोपं संयच्छ गान्धारी मेवं भूः सत्यवादिनि ॥

(स्त्री० प० १५।१३)

गान्धारी व्यास के समझाने पर शान्त हुई, पर फिर शोक भड़का। उन्होंने युधिष्ठिर को बुलवाया और युधिष्ठिर ने कोई सफाई नहीं दी। बस, मैं अपराधी हूँ माँ तेरा, मैं ही तुम्हारे पुत्र का हन्ता हूँ। मैं ही पृथ्वी के नाश का कारण हूँ, मुझे शाप दो। गान्धारी इस सीधी विनयशीलता के लिए तैयार नहीं थीं। वह आँखों की पट्टी पूरी नहीं खोलतीं। जरा-सा नीचे देखती हुई खोलती हैं और युधिष्ठिर के पैरों के नख दिख जाते हैं। गान्धारी की दहकती नज़र पड़ते ही वे नख काले हो जाते हैं। परन्तु वही गान्धारी श्रीकृष्ण को क्षमा नहीं करतीं। तुमने कुरुवंश के विनाश की उपेक्षा की, तुम्हारे कुटुम्बी भी आज से बीस वर्ष बाद आपस में लड़ कर मर जायेंगे और तुम स्वयं दुर्मरण प्राप्त करोगे। तुम्हारे कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी तुम्हारे मरने पर ऐसे ही ढाँढ़ मार कर गिरेंगी जैसे भरत कुल की स्त्रियाँ रो रही हैं, अपने पति और अपने पुत्र की लाश पर।

यस्यात्परस्परं घ्नन्तो ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः।
उपेक्षितास्ते गोविन्द तस्मात् ज्ञातीन् बधिष्यसि ॥
त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन।
हतजातिर्हतामात्यो हत पुत्रो बनेचरः ॥
अनाथवदविज्ञातो लोकेष्वनभिलक्षितः।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि ॥
तवाप्येवं हतसुता निहतज्ञातिबान्धवाः
स्त्रियः परिपतिष्यन्ति यथैता भरतस्त्रियः ॥

(स्त्री० प० २५।४३-४६)

श्रीकृष्ण इस शाप को हँस कर लेते हैं और गान्धारी को यह कह कर अप्रतिभ कर देते हैं—

चीर्णं चरसि क्षत्रिये।

जो बात पहले ही घट चुकी है, घटना-प्रवाह में आ चुकी है, उसको अपने शाप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से घटित करने जा रही हो। पाण्डव यह सुनते हैं और जीवन से निराश हो जाते हैं। पर श्रीकृष्ण शोक की चिन्ता नहीं करते, कोई दया नहीं करते गान्धारी को ही सुनाते हैं : "तुमने दुर्योधन जैसे ईर्ष्यालु, दुरात्मा वैर पुरुष, निष्ठुर और वृद्धों में अनादर करने वाले पुत्र को आगे किया। मुझे दोष दे कर अपने दोष से मुक्त होना चाहती हो—

तवैव ह्यपराधात् कुरवो निधनं गताः"

(स्त्री० प० २६।१)

इस प्रकार श्रीकृष्ण की इस निष्ठुर फटकार में पुत्र-शोक की कहानी का अन्त होता है। यह अन्त एक बार पुनः सोचने को विवश करता है कि ग्रन्थ का तात्पर्य निष्ठुर तटस्थता में है, निरपेक्ष शम में है, करुण में नहीं, क्योंकि धर्मद्रुम के मूल तो श्रीकृष्ण हैं, उनके मन में तो निरपेक्ष निरुद्वेग समता है, शत्रु-मित्र वहाँ हैं ही नहीं। जिन मानवीय नातों-रिश्तों से दूसरे विह्वल हैं, उनसे श्रीकृष्ण क्यों नहीं होते, विदुर क्यों नहीं होते, यह प्रश्न बार-बार महाभारत पढ़ने वाले के मन में उठता है। कोई सही उत्तर नहीं मिलता। हाँ, एक उत्तर मिलता है। मनुष्य का दुःख दूसरे का लाया हुआ नहीं है, अपना लाया हुआ है और किसी समुदाय का दुःख भी उसी समुदाय का लाया हुआ होता है, दुःख के कारण बाहर नहीं हैं, भीतर हैं, मनुष्य के अस्तित्व के भीतर हैं। यह उत्तर मिलता है तो विचित्र प्रश्न उठने लगते हैं। हम दुःख को क्यों नहीं रोक पाते ? श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश हमें क्यों नहीं दुःख को सहने और दुःख को रोकने की शक्ति देता है ? क्योंकि महाभारत युद्ध से बड़ी घटना महाभारत ग्रन्थ की रचना भी अकृतकार्य रह जाती है ? मनुष्य को यह पहचान कराने में कि मृत्यु और अमृतत्व तुम्हारे भीतर है, न किसी मित्र में है, न किसी शत्रु में, न किसी सत् शास्त्र में, न किसी नकली शास्त्र में ? बार-बार महाभारत के ही शब्दों में रसोई के रस-ग्रहण में जैसे कलछुल असमर्थ रहती है, वैसे ही महाभारत जैसे शास्त्रों के शास्त्र, काव्यों के काव्य, जीवनों के जीवन के रस-ग्रहण में वह मनुष्य जिसके पास अपनी प्रज्ञा नहीं है, क्यों असमर्थ रहता है ?

ये प्रश्न उठते हैं, यही उत्तर है इस जिज्ञासा का कि श्रीकृष्ण क्यों उद्विग्न नहीं होते। क्योंकि ये प्रश्न उठें न, तो श्रीकृष्ण अवतीर्ण क्यों हों ? ये प्रश्न उठें न, तो मनुष्य मनुष्योत्तम कैसे हो ? ये प्रश्न उठें और बार-बार उठें, यह गहरी करुणा का बोध बार-बार मनुष्य की चेतना को कौंचे, मथे, बींधे, काटे, दाहे, यही जीवन की चरितार्थता है। मोक्ष कोई चरितार्थता में चरितार्थता है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमात्मा से सायुज्य या सारूप्य कोई चरितार्थता है, स्वर्ग में इन्द्र की कोई चरितार्थता है ? परमात्मा की, विश्वात्मा की भी चरितार्थता इसमें है कि नर रूप में अपने को अवस्थित करें, नर के व्यवहार करें, नाते-रिश्ते निभायें, नाते-रिश्तों के मोह-छोह की विडम्बना से गुजरें और कहीं न कहीं पक्षधर बनें, पक्षधर होने का दायित्व अपने ऊपर लें और तब सबसे निछोह, निर्मोह होकर सब के दुःख को उसका इतिहास उन्हीं के राग-द्वेष की खिड़की से झाँक कर यकायक गायब हो जाय, एक विशाल वृक्ष को रस देने वाला मूल एक दूसरे विशाल वृक्ष के मूल से लग कर तैयारी कर ले, नारायण की, नर से नरोत्तम से विदाई की—और पैरों में तीर लगे तो नर जान कर नहीं, सावज जान कर नर बिंध जाय। नरत्व की निष्कृति हो जाय, नरोत्तम उद्धव के मन में भाव बन कर चले जायें। खाली जगह नारायण भर लें, व्यास अपनी सरस्वती को उपराम दें, गणेश लेखनी रख दें, वैशम्पायन पोथी बन्द कर दें, जनमेजय के हाथ वक्ता के पैरों पर चुपचाप चले जायें। दूसरे श्रोताओं के हाथ तिप्-तिप् झरती आँखों पर चले जायें। यही नारायण की चरितार्थता है। वे अव्यक्त जल में रहते हैं और व्यक्त हुए बिना जो रह न सके, उस अश्रु-जल में वे तिरने लगें, यही उनकी चरितार्थता है। बिना लाग-लपेट के कहें तो करुणा के रूप में ही जीवन का सत्य आकार पाता है। महाभारत का प्रतिपाद्य सत्य का करुणा के रूप में अवतरण है।

मैंने इस दूसरे अध्याय का शीर्षक रखा है—महाभारत की पीड़ा। और मैंने धृतराष्ट्र के ऐकान्तिक अजानपदिक दुःख से बात शुरू की जिससे अपने मुख्य वक्तव्य के लिए एक फलक तैयार कर सकूँ। मेरा मुख्य वक्तव्य जानपदिक दुःख को ले कर है। इस जानपदिक दुःख की प्रतीति का हलका-सा आभास व्यास की युद्धपूर्व की परिकल्पना से अवश्य दिया है। युद्ध की वास्तविकता का पीड़ा-भरा साक्षात्कार कैसा होता है, इसकी चर्चा करूँगा। जब युद्ध में वीर-गति प्राप्त करने वालों को तिलांजलि दी जा रही थी तो कुन्ती ने कर्ण को अपना ज्येष्ठ पुत्र बतलाया। युधिष्ठिर को यह जान कर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्हें बार-बार यह बात कचोटने लगी कि जब-जब कर्ण कटु वचन कहते थे, मुझे क्रोध आता था, पर कर्ण के पैरों पर मेरी दृष्टि पड़ती थी, वे पैर मेरी माँ के पैरों जैसे थे, मेरा क्रोध शान्त हो जाता था—

यदा ह्यस्य गिरो रूक्षाः शृणोमि कटुकादयाः।
सभायां गदतो धूते दुर्योधन हितैषिणः॥
तदा नश्यति मे रोषः पादौ तस्य निरीक्ष्य ह।
कुन्त्या हि सदृशां पादौ कर्णस्येति मतिर्मम॥

(शा० प० २।४०-४१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युधिष्ठिर इतने दुःखी हुए कि उन्हीं माँ को उलहना दिया—तुमने यह बात छिपा कर मुझे इस पश्चात्ताप की स्थिति में ला दिया है, आज से स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं पचेगी। इस आघात को वह झेल नहीं पाते जैसे बस उनके धैर्य का बोध जर्जर हो कर बस उस धक्के की प्रतीक्षा कर रहा हो और वह युद्ध में विजय प्राप्त करके भी राज्य का भोग नहीं करना चाहते। उन्हें इतने बड़े विनाश के बाद युद्ध का व्यापार ही बहुत हेय लगता है—राज्य के लोभ ने क्या कर दिया, जिनके पैदा होने के लिए पिताओं ने तप किया, माताओं ने कितने व्रत किये, कितने अनुष्ठान किये, कितनी आशाएँ बाँधीं, उनके सारे मनोरथ विफल हो गये, उनके जवान बेटे, कुण्डलों से दमकते हुए बेटे बिना पार्थिव भोग भोगे, बिना अपने देव-पितृ-ऋणों से उऋण हुए यमलोक को चले गये, हमने कितनी आकांक्षाएँ धूलि में मिला दीं—

बहुकल्याण संयुक्तानिच्छन्ति पितरः सुतान्।
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च तितिक्षया॥
उपवासैस्तथैज्याभिर्व्रत कौतुकमंगलैः।
लभन्ते मातरो गर्भान् मासान् दश च बिभ्रति॥
यदि स्वस्ति प्रजायन्ते जाता जीवन्ति वा यदि।
सम्भाविता जातबलास्ते दद्युर्यदि नः सुखम्॥
इह चामुत्र चैवेति कृपणा फल हैतवः।
तासामयं समुद्योगो निर्वृत्तः केवलोफलः॥
यदासां निहता पुत्रा युवानो मृष्टकुंडलाः॥
अभुक्त्वा पार्थिवान् भोगान् ऋणान्यनपहाय च।
पितृभ्यो देवताभ्यश्च गता वैवस्वतक्षयम्॥
(शा० प० ७।१४-१८)

युधिष्ठिर को अर्जुन समझाते हैं, युद्ध से स्वयं मोहवश मुँह मोड़ लेने वाले अर्जुन समझाते हैं, तुम धर्म और अर्थ को छोड़ कर वन में जाकर तपस्वी जीवन बिताना चाहते हो, यह पापिष्ठ कापाली वृत्ति, यह भिखमंगी वरण करोगे, संसार क्या कहेगा ? सभी भाई बार-बार धिक्कारते हैं, पर युधिष्ठिर का वैराग्यभाव अविचल रहता है, वह रक्त-दिग्ध अन्न नहीं खाना चाहते, वह इस स्थिति को नहीं स्वीकार कर सकते कि कौरवों के बिना, साझीदारों के बिना, राज्य का भोग किया जाय। वे इस ग्लानि से मुक्त नहीं हो पाते कि मैं ही पृथ्वी के नाश का कारण हूं। व्यास समझाते हैं : जो रचा जाता है वह नष्ट होता है, जो जन्म लेता है, मरता है, जो उठता है, वह गिरता है, जो जुड़ता है, वह बिछुड़ता है। सुख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का अन्त है आलस्य और फिर दुःख, दुःख का अन्त है दक्षता, कुशलता, सजगता और सुख—

सर्वे क्षयन्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ।।
सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम् ।।
(शा० प० २७।३१-३२)

पर युधिष्ठिर कुछ बोलते नहीं; उनके मन में यह बात उतरती नहीं कि राज्य का भोग मेरी नियति है। तब अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं, तुम समझाओ। श्रीकृष्ण अपने निठुर तर्कों सें समझाते हैं कि युद्ध में वीर-गति को जो प्राप्त हुए, उनके लिए क्यों शोक करते हो और पुत्र-शोक विह्वल संजय को सम्बोधित कर नारद की गाथा सुनाते हैं। इस गाथा में अनेक यशस्वी राजाओं का स्मरण है। अन्त में यह टेक है, ऐसे महान् राजा चले गये तुम्हारे पुत्र से चौगुने यशस्वी और पुण्यवान्, क्यों पुत्र के लिए शोक करते हो—

स वै ममार सृंजय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात्पुण्यतरश्चैव मा पुत्रमनुतप्यथाः ।।
(शा० प० १२)

स्वयं नारद आ कर युधिष्ठिर को समझाते हैं। अन्त में व्यास पुनः प्रबोधित करते हैं। यज्ञ करो, दान दो, मन के पाप की शान्ति के लिए प्रायश्चित्त कर लो, पर राज्य करने से विरत न हो। जैसे-तैसे युधिष्ठिर राज्याभिषेक के लिए प्रस्तुत होते हैं, पर उन के मन का चोर नहीं जाता है, भीष्म से राज-धर्म, मोक्ष-धर्म जैसे विविध अवस्थाओं के धर्मों के बारे में चर्चा करके भी, अश्वमेध कर के भी वह भीतर-भीतर जलते रहते हैं, उन का अन्तर्दाह हिमालय की यात्रा में ही शान्त होता है।

युधिष्ठिर का दुःख अपना नहीं है, उसके कारण वही अकेले नहीं हैं, सबसे कहीं-न-कहीं चूक हुई है। सबने अपनी गलती कभी-न-कभी मानी भी है, पर सबने एक दम्भ पाला है कि हम जो कर रहे हैं, वह उचित है, कम-से-कम हमारी स्थिति में उचित है, सब में कहीं-न-कहीं सीधी राह चलने से कतराव है। सभी के साथ ऐसा घटित होता है कि यकायक उनकी नकाब उतार ली जाती है, सब के भीतर के झूठ को कोई न कोई सगा व्यक्ति ही उघार कर रख देता है, इसके बावजूद सब लाचार हैं, गलत-सही जिस राह पर हैं, उस पर चलते रहते हैं और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महा विनाश में सब एक साथ हो जाते हैं। महाभारतकार जो भी रहे हों, यह देख रहे हैं और उस ग्रन्थ को अपने जीवन का अंग बना कर वाचन-रचना करने वाला देख रहा है कि एक छोटा-सा प्रमाद कितने बड़े झूठ का जाल रच देता है, कोई भी पछतावा उस जाल को काट नहीं पाता।

कौरव-पाण्डवों के उदय के मूल में प्रमाद है, पराशर का प्रमाद कि सत्यवती के ऊपर आसक्त होते हैं और उसे पुत्र उत्पन्न करके पुनः कुमारी होने का वरदान दे कर कृतकार्य हो जाते हैं, यह देख नहीं पाते कि जिस बीज को इस कुहासे में नदी के द्वीप में रोप रहा हूँ, वह किस भयंकर अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होगा, अशेष ज्ञान सम्पदा अर्जित करके भी कैसे कुमारी माँ के स्नेहपाश में उलझ कर ऐसी कुटुम्ब-रचना करेगा जो रचना कुटुम्ब-भाव ही नष्ट कर देगी। सत्यवती से प्रमाद होता है कि वह अपने नये चाहक शान्तनु से वादा लेती है कि पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्र नहीं, तुम्हारी कोख से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा। और होता यह है कि उसके तीन पुत्र होते हैं, दो अकाल कालकवलित हो जाते हैं, एक बचते हैं विचित्र-वीर्य, उनके लिए तीन-तीन बहुएं भी हरण करके लायी जाती हैं। अब सब राज विलसने की आशा क्षीण हो जाती है। परन्तु सौतेले पुत्र भीष्म ब्रह्मचर्य की भीष्म-प्रतिज्ञा कर चुके हैं, सन्तान कैसे चले? वह कौमार्य पुत्र व्यास का स्मरण करती हैं, तुम इन बहुओं को सन्तान दो, बहुएँ व्यास के काले भयावने रूप को सह नहीं पातीं, जेठी अम्बिका आँखें मूँद लेती है, अन्धे धृतराष्ट्र पैदा होते हैं। छोटी अम्बालिका डर के मारे पीली पड़ जाती है, रक्ताल्पता से ग्रस्त पांडु पैदा होते हैं, सत्यवती बड़ी बहू अम्बिका से कहती है, एक बार तुम पूरे मन से व्यास को स्वीकार करो, वह छल करती है, दासी भेज देती है और दासी के मन में पूरा स्वीकार भाव है, सर्वांग सुन्दर विदुर पैदा होते हैं। भीष्म से प्रमाद होता है कि दो भाइयों के लिए काशीराज की तीन-तीन कन्याएँ हर कर लाते हैं, बड़ी कन्या अम्बा शाल्व के पास लौटना चाहती है। भीष्म तो अनुमति दे देते हैं, पर शाल्व अम्बा के प्रति अनुरक्त होता हुआ भी उसे अपहृत नारी मान कर ग्रहण नहीं करता। वह अम्बा नारीत्व के अभिशाप से जल कर दो-दो जन्मों में निरन्तर तप करती है, मैं भीष्म के कारण इस दुरवस्था को प्राप्त हुई, उसके वध की योग्यता प्राप्त कर सकूँ। भीष्म ने पितृभक्ति में कुछ अतिरिक्त कठोर प्रतिज्ञा की और विमातृभक्ति में कुछ अतिरिक्त पुरुष-भाव दिखलाया—एक भाई के लिए तीन बहुएँ ले आये, यह भी नहीं सोचा कि अम्बा सामाजिक व्यवस्था की दुर्बलता के कारण इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होगी, उसका क्या होगा, उसे जाने दिया। अम्बा के अपहरण के प्रतिकार में परशुराम भीष्म से लड़ने पर उतारू हो गये, तब भी भीष्म क्षात्र दम्भ में ही फूले रहे। वह बिना राजा हुए राज्य के अभिभावक का दम्भ पालते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे तीन पुश्त तक और बन गये दास; धर्म और न्याय-बुद्धि रहते हुए उन्होंने विरोध की क्षमता खो दी। नारीत्व के तिरस्कार का फल भीष्म को मिला। युधिष्ठिर से सबसे बड़ा प्रमाद तो द्यूत हुआ, वह सब विवेक भूल गये, भाइयों और पत्नी तक को दाँव पर रख दिया, यह जानते हुए भी कि द्रौपदी उनकी सम्पत्ति नहीं है, उस प्रमाद की निष्कृति विराट् के घर विराट् के हाथों पासे का आघात पा कर हुई। दूसरा प्रमाद हुआ जब उन्होंने 'अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो' कह-कर अपनी सत्यवादिता सुनायी। युधिष्ठिर को इसके लिए अपने प्रिय भाई अर्जुन से, अपनी पत्नी द्रौपदी से फटकार सुनने को मिलती है, अपने पुत्रों के सोते में वध का घोर दुःख झेलना पड़ता है। एक मामूली नेवले से अपने यज्ञ की तुच्छता का उद्घोष सुनने को मिलता है। कुन्ती से प्रमाद हुआ कि कर्ण को उसने एक बाल-सुलभ कुतूहल में जन्म दे कर पानी में फेंक दिया, किसी को नहीं बतलाया, युद्ध का भय सामने उपस्थित होने पर वह अपने पुत्र को मातृत्व देने गयी, पुत्र ने कहा, अब तीर निकल चूका, तुमने मेरी वास्तविक पहचान नष्ट कर दी, बड़ा अपकार किया, अब मैं सूतपुत्र की पहचान पा चुका हूँ, दुर्योधन की कृपा से अंगराज हो गया हूँ। मैं इतना ही करूँगा कि दावे पाकर भी तुम्हारे चार पुत्रों की जान बख्श दूँगा, पर अर्जुन को नहीं छोड़ूँगा, तुम्हारे हर हालत में पाँच पुत्र बने रहेंगे कर्ण सहित या अर्जुन सहित। कर्ण जैसे तेजस्वी से दो-दो प्रमाद हुए, मारे डाह के परशुराम से अस्त्र विद्या सीखने गये और झूठ बोल गये—मैं ब्राह्मण हूँ, यह झूठ उनकी कठिन सहिष्णुता के कारण पकड़ा गया और परशु-राम ने शाप दिया कि तुम यह विद्या कठिन अवसर पर भूल जाओगे। दूसरा प्रमाद हुआ कि तीरन्दाजी के अभ्यास के नशे में उन्होंने एक ब्राह्मण की होम-धेनु के बछड़े को मार दिया, फिर दक्षिणा दे कर ब्राह्मण को उन्होंने सन्तुष्ट करना चाहा, और ब्राह्मण इससे और कुपित हुआ कि कैसा शूर-वीर है जो धन से पुण्य खरीदना चाहता है। उसने शाप दिया कि तुम्हारे रथ का पहिया धँस जायेगा, तभी तुम मारे जाओगे। कर्ण ने दान के दम्भ में और ईर्ष्या तथा अप-मान के दाह में विवेक एक बार खोया तो खो दिया। पहिया धँस जाने पर उन्होंने अर्जुन से कहा, बाण मत चलाओ, रुक जाओ, रथ से उतरे हुए पर रथी बाण नहीं चलाते। अर्जुन रुका, पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया : 'तुम्हारी धर्म-बुद्धि तब कहाँ थी, जब द्रौपदी का चीर हरण हुआ, अभिमन्यु का वध हुआ, भीम को जहर पिलाया गया, पांडवों को जलाने के लिए लाक्षागृह बनाया गया, कपट से जुए में युधिष्ठिर को हराया गया, वन में उनके ऊपर आक्रमण की रचना की गयी'? कर्ण कुछ बोल नहीं पाता। उसका झूठ उसे मार देता है। द्रोण से प्रमाद होता है कि अपने सहपाठी द्रुपद से नाराज हो कर द्रुपद से बदला लेने के लिए अस्त्र विद्या के विक्रेता बन कर धृतराष्ट्र के आश्रित हो जाते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और द्रुपद से वदला ले कर प्रतिहिंसा के चक्र में फँस जाते हैं। सब धर्म-बुद्धि रखते हुए वह अभिमन्यु के लिए चक्रव्यूह की रचना करते हैं। पुत्र-मोह में वह पुत्र-मृत्यु की अप्रमाणित घोषणा सुन कर शस्त्र त्याग कर बैठते हैं और द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा मार डाले जाते हैं। और पात्रों की बात क्या की जाय, उनमें आसुरी सम्पदा का वैसे ही आधिक्य है, चाहे दुर्योधन हो, दुःशासन हो, जयद्रथ हो, शकुनि हो, धृष्टद्युम्न हो। हाँ, कृष्ण की सखी द्रौपदी से भी, जो याज्ञसेनी है, यज्ञ द्वारा पैदा हुई है, भूल होती है, उसे ऐश्वर्य का अभिमान होता है, दुर्योधन को उजले फर्श में जल का भ्रम होता है तो अशोभन तरीके से हँस पड़ती है, 'अन्धे के पुत्र को यह भ्रम होना ही था।' उससे आग भड़क उठती है दुर्योधन के मन में। और फिर तो प्रतिहिंसा का दुश्चक्र शुरू हो जाता है। दूसरी बार भूल होती है जब वह सन्धि प्रस्ताव के समय श्रीकृष्ण से कहती है, मन्यु वेग से उसके मुँह से निकलता है, न मेरे पति हैं, न पुत्र हैं, न भाई हैं और गोविन्द तुम भी नहीं हो। इस बात की याद दिलाते हैं भीम जब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों का वध कर दिया है—

> नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा भ्रातरौ न च।
> न वै त्वमिति गोविन्द शमभिच्छति राजनि॥

तुम्हीं ने श्रीकृष्ण से ऐसे कठोर वाक्य कहे थे। अब क्षात्र धर्म की कठोरता को स्वीकार करो। द्रौपदी को श्रीकृष्ण से ऐसा नहीं कहना चाहिए था, पर वह अपने से अधिक महत्त्व देकर चूक गयी। एक ओर धर्मिष्ठ और बलिष्ठ पात्रों के प्रमादों की यह शृंखला दुःख की शृंखला बनते दीखती है तो दूसरी ओर विचित्र विडम्बना है कि कमजोर और दुरात्मा पात्रों के विवेक के बीच-बीच में उदय की शृंखला भी दीखती है। दुर्योधन गन्धर्व-राज चित्रसेन द्वारा जब बाँध लिया जाता है और युधिष्ठिर उसे छुड़वा लेते हैं तो वह ग्लानि में अनुतप्त होकर सब कुछ छोड़ कर अनशन करने को उद्यत हो जाता है। अश्वत्थामा पिता के अधर्म्य वध के बाद भी एक वार दुर्योधन को समझाता है कि सन्धि कर लो, धृतराष्ट्र को वेश्या में उत्पन्न युयुत्सु एक झटके में निर्णय लेता है, और दुर्योधन के साथ न रह कर युधिष्ठिर के साथ हो लेता है, सौ भाई मारे जाते हैं, युयुत्सु अकेला धृतराष्ट्र को पानी देने वाला बचता है। हिडिम्बा राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न घटोत्कच क्षत्रिय-पुत्रों से अधिक पितृ-ऋण चुकाता है। छोटी-छोटी कथाओं के छोटे-छोटे पात्र—मांसविक्रयी व्याध, तुलाधार वैश्य, यहाँ तक कि तिर्यग् योनि के जीव, पशु-पक्षी भी तपस्वियों से अधिक ऊँची धर्म-बुद्धि का परिचय देते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाभारत पढ़ने पर ऐसा लगता है कि हार-जीत, जन्म-मरण, कीर्ति-अकीर्ति की बात अलग रख दें, तीन पुरुष और तीन नारियों की आजीवन व्यथा-कथा ही महाभारत है। तीनों पुरुष हैं व्यास, विदुर और युधिष्ठिर, तीनों धर्म के वेत्ता हैं, धर्म के प्रतिमान हैं और धर्म के बोध के कारण ही निरन्तर एक कचोट से कष्ट पाते रहते हैं कि 'न च कश्चित् शृणोति माम्'—मेरी बात कोई नहीं सुनता। तीनों का जन्म कुहासे से ढका हुआ है, तीनों अपने समय की पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था को नृशंस मानते हैं, तीनों नारी के प्रति चाहे वह माँ हो, पत्नी हो, बहू हो या कुछ भी न हो, किसी जाति की हो, आदर भाव रखते हैं, तीनों प्रतिहिंसा के दुश्चक्र को धिक्कारते हैं। पर व्यास का दुःख सबसे गहरा है। उन्हें न केवल देखना है, उन्हें देखा हुआ सब कुछ रचना है, और रचना को देखने का साधन बनाना है। युधिष्ठिर को निष्कृति मिलती है, विदुर को भी मिलती है, दोनों हिमालय की ओर जाते हैं, अकेलेपन की ऊँचाइयों की खोज में, पर व्यास को सरस्वती तीर पर पूरी घटना मन में फिर रचनी है और रच कर भी उदास हो जाना है, क्या किया, कुछ भी तो नहीं किया। माँ के कारण मैं कैसे मानवीय ममता के जाल में फँस गया, मैं दूसरे कृष्ण को देखता रहा, जैसे प्रकाश की धारा मेरे आस-पास से मेरे ऊपर से बही जा रही है और मैं द्वैपायन कृष्ण, द्वीप में पैदा हुआ, जीवन-भर द्वीप बना रहा।

तीन नारियाँ हैं अम्बा, कुन्ती और द्रौपदी, तीनों शिकार हैं सामाजिक व्यवस्था की जो उन्हें जीवन भर प्रताड़ित करती है। अम्बा कन्या-हरण के तथाकथित क्षात्र-धर्म की शिकार हो कर तीन-तीन जन्म प्रतिहिंसा में जलती है, कोई उसकी पीड़ा नहीं समझता, न हरण करने वाला, न प्रेमी, न पिता, न ऋषि-मुनि। उसका शिखण्डी के रूप में रूपान्तर उपहास का विषय बन जाता है। वह स्त्री भी नहीं रह पाती और पुरुष हो कर भी, भीष्म से बदला ले कर भी हार ही पाती है। कुन्ती एक अबोधता-वश सूर्य को आमन्त्रित करती है और जीवन भर के लिए वेध्य हो जाती है, उससे सूर्य से उत्पन्न सचाई वहन नहीं की जाती, जब वह इसे प्रकाशित करती है तो बड़ी देर हो चुकी है, कर्ण भी उसका तिरस्कार करते हैं, युधिष्ठिर भी प्रतारणा देते हैं कि मुझे तुम जानती थीं, मेरे लिए कोई सचाई मुख्य नहीं है, क्यों नहीं बतलाया। द्रौपदी यज्ञ की ज्वाला से पैदा हुई, पर वह यज्ञ ही शोध-यज्ञ था, मत्स्यवेध स्वयंवर में वह वरण करती है अर्जुन को, हो जाती है पाँच की पत्नी, पाँच की पत्नी हो कर भी वह अरक्षित है, सभा में उसका घर्षण होता है। वह अपमान से जलती रहती है। पर वह तीनों नारियों में सबसे अधिक विद्रोहिणी है, वह पुरुष समाज से लोहा लेती है, एकमात्र वही है जिसके श्रीकृष्ण मित्र हैं, बराबरी के रिश्ते में हैं, औरों के लिए तो पूज्य हैं, पुत्र हैं, सम्भाव्य हैं, दुर्ज्ञेय हैं, श्रीकृष्ण उसी के मित्र हैं और प्रत्येक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संकट में वे साथ हैं। द्रौपदी इसी से अम्बा और कुन्ती की तरह परावलम्बित नहीं हैं, वह अपने बल पर टिकी रहती हैं।

महाभारतकार द्रौपदी को इसी से महाभारत के केन्द्र में रखते हैं कि वह एक समस्या भी है, एक समाधान भी है। वह युधिष्ठिर को नायक बनाते हैं कि वह सबसे कमजोर और वेध्य होते हुए भी सबसे अधिक ज़माने की चोट झेलते रह सकते हैं और उनका निर्णय चोट खाने से प्रभावित नहीं होता। दोनों उन्हें लगता है, उनकी पीड़ा है। महाभारत किसी छोटे को छोटा नहीं देखता, बड़े को बड़ा नहीं देखता, वड़प्पन ढूँढ़ता है कार्य में, शील में। हम सब इस अनुष्ठान में सम्मिलित हैं, एक का किया अनुष्ठान नहीं है, इस 'ये यजामहे' के भाव में—

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
संकरात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम्॥
इदमोषं प्रमाणं च य यजामह इत्यपि।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः॥

(वन प० १८०।३१-३३)

और किसी की भी विडम्बनापूर्ण स्थिति को अनदेखा नहीं करता। युधिष्ठिर धर्मराज हैं, विवेकशील हैं, वह वड़े मन का परिचय देते हैं, पर अन्तिम संघर्ष में युद्ध की दानवी लीला की छाया में वे भी मलिना जाते हैं। श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के धर्मराज्य रूपी वृक्ष के मूल हैं, पर एक गैर-बराबरी की लड़ाई में जीतने के लिए दिखने में छल जैसी युक्ति बताने को लाचार हैं या जिसकी जैसी निष्कृति है, उसे वहाँ तक पहुँचाने की भूमिका निभाने को लाचार हैं। उन्हें अनेकों के सत्य का निर्वाह करना है, अनेकों की मन्यु का उपशम करना है; उनको छोटे सत्य, छोटी नैतिकता, छोटी बुद्धि को बड़े सत्य, बड़ी नैतिकता और वड़ी बुद्धि के आगे झुकाना है। लगता है, महाभारतकार किसी भी बड़प्पन को अवेध्य नहीं रहने देना चाहते, न किसी अकिंचनता को हीन होते देख सकते हैं। इसके पीछे प्रयोजन तलाशने चलते हैं तो यही समझ में आता है कि महाभारत जीने का उत्साह देता है, पर ऐसा उत्साह नहीं कि तुम जीने की कठिनाइयों को झेलने को तैयार न हो और मुँह के बल पर गिर पड़ो। एक दूसरा प्रयोजन यह समझ में आता है कि दुःख पर भरोसा किया जा सकता है, सुख पर नहीं। सुख में रहते हुए आदमी के लिए जोखिम है कि वह मद-मोह का वध्य हो जाय (वर्तमानः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुखे सर्वो मुह्यतीति मतिर्मम—व०प०१८१।३०)। दुःख पर प्रतीति इसलिए भी की जा सकती है कि गहरे दुःख में ही मनुष्य को प्रतिस्मृति मिलती है, दूर तक पीछे देखने की, अपने को अपनी सम्पूर्ण इयत्ता से जोड़ने की, अपने को विश्लेषित करने की क्षमता मिलती है। जुए में सारा वैभव हार कर तेरह वर्षों का कठिन वनवास ले कर जब युधिष्ठिर चलने को होते हैं तो व्यास उन्हें अलग ले जा कर प्रतिस्मृति का वरदान देते हैं, युधिष्ठिर को क्यों देते हैं, इसका कारण है, युधिष्ठिर जितना दुःख बर्दाश्त कर सकते हैं उतना दूसरे भाई नहीं। भवभूति ने राम के मुँह से यही कहलाया है—

दुःखसंवेदनायेव रामे चैतन्यमर्पितम् ।

अभी मैंने अजगर पर्व से एक उद्धरण दिया जहाँ अजगर योनि में अभिशप्त नहुष के प्रश्न का उत्तर युधिष्ठिर ने दिया। युधिष्ठिर ने पूछा, आप अजगर कैसे हुए ? नहुष ने कहा कि मैं इन्द्र पद पर आसीन हो कर ऐश्वर्य मद में मोहित हो गया। मैंने ऋषियों से कहा, मेरी पालकी उठाओ, मुझे शची के पास ले चलो। उन ऋषियों में एक थे अगस्त्य, उन्होंने पालकी उठायी तो, पर शाप भी दिया—जाओ, अजगर हो जाओ। नहुष ने पश्चात्ताप किया तो अगस्त्य ने कहा कि तुम्हें स्मृति बनी रहेगी और तुम्हारा उद्धार तुम्हारे ही वंशज युधिष्ठिर तुम्हारे प्रश्नों का समुचित उत्तर दे कर करेंगे। नहुष को इतने बड़े सुख के बाद सत्ता के मद के दण्ड रूप में जो दुःख मिलता है, वह स्मृति के कारण ही तीव्र बना रहता है और इसी कारण नहुष की प्रज्ञा जाग्रत रहती है। युधिष्ठिर क्यों नहुष के उद्धार-कर्ता बनने को नियत हैं, इसके बारे में सोचने पर मुझे यही लगता है कि उनमें ऐश्वर्य का मद नहीं है, और जुए में ऐश्वर्य गँवा कर वह अपने सत्यनिष्ठ स्वभाव में और अच्छी तरह अधीष्ठित हो गये हैं। युधिष्ठिर को दुःख ने यह पहचान करा दी है कि सुख भी तुच्छ है और सुख से तो दुःख बड़ा है, पर वह भी उस स्थिति से छोटा है, जहाँ न सुख है, न दुःख है। उस स्थिति में मनुष्य पहुँच कर सबके सुख और सबके दुःख की बात सोच सकता है। दुःख उस स्थिति में प्रवेश कराने का एक द्वार है जिस प्रकार मृत्यु का भय जीवन का द्वार है। बिना मृत्यु का भय सामने उपस्थित हुए जीवन की महत्ता समझ में नहीं आती, न सही और सच्चे जीवन का प्रकार समझ में आ सकता है। मृत्यु भी कई प्रकार की होती है, शरीर से प्राणों का उत्क्रमण ही मृत्यु नहीं है, अपमान भी—विशेष रूप से अपने बन्धु-बान्धवों के द्वारा अपमान भी मृत्यु है—विवेकी पुरुष से दुष्कर्म हो जाना भी मृत्यु है, पापी के आगे हृदय से हार मान लेना भी मृत्यु है। महाभारत में मृत्यु का अभिप्राय केवल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गीता के प्रवेशद्वार पर ही नहीं, अनेक बार अनेक स्थलों में दुहराया गया है शुरू से ले कर अन्त तक। महाभारतकार मृत्यु या काल के भयप्रद पक्ष को महत्त्व नहीं देते, वह महत्त्व देते हैं, मृत्यु के बोधप्रद पक्ष को। काल और काल की गति समझे बिना जीवन का स्वीकार, पूरी तरह स्वीकार सम्भव नहीं है।

स्थान-स्थान पर महाभारत के बिखरे वाक्यों से ऐसा अर्थ बहुतों को निकलता प्रतीत होता है कि महाभारत नियतिवाद को प्रश्रय देता है, दैव को प्रश्रय देता है; पर यह महाभारत का मूल अभिप्राय नहीं है। दैव की बात है, पर दुर्बलता दिखलाने के लिए : जो दु:ख को अपना किया मानने का साहस नहीं रखता, वह दैव को मानता है और दु:ख की दुस्सहता की प्रतीति में दैव बहुत सहायक होता है। बहू कुन्ती से आशीर्वाद लेने पहुँचती हैं, कुन्ती बहू को आशीष देती है :

> भाग्यवन्तं प्रसूयेथाः न शूरं न च पंडितम्।
> शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति मे सुताः॥

बेटी, तुम भाग्यवान् पुत्र उत्पन्न करना, शूर और पंडित पुत्र नहीं, देखो, मेरे बेटे कितने शूर कितने विद्वान् और भाग्यहीन होने के कारण वन में मारे-मारे फिर रहे हैं। इसमें कुन्ती का यह भाव नहीं है कि मेरे पौत्र कायर हों, मूर्ख हों; बेटों के दु:ख को न सह सकने वाला उसका मातृत्व अकुला उठता है कि भाग्य ने कैसा खेल रचा। क्या मेरे बेटों के बेटे भी सुख नहीं पायेंगे। माँ के हृदय में स्नेह के कारण भविष्यत् के बारे में शंका होती है, उसी से घबड़ा कर वह कहती है, बेटी तुम्हारे बेटे भाग्यवान् हों, यह आशीर्वाद मैं पहले देना चाहती हूँ क्योंकि पराक्रम और ज्ञान की व्यर्थता अपने ऊपर भोग रही हूँ। कुन्ती के इस आशीर्वाद में महाभारत ने पुत्र-स्नेह की दुर्बलता में नारी-चित्र की विपुलता का बोध कराया है, इसमें भाग्यवान् की प्रशंसा उद्दिष्ट नहीं है।

महाभारत में नियति यदि है तो शुभाशुभ कर्म की परिणति है, शाप है तो कहीं न कहीं उसके मूल में प्रमाद है। और शाप है तो उसका परिमार्जन है,वह परिमार्जन मनुष्य की सोई हुई चेतना का जागरण है। पुण्यात्मा को दु:ख ही दु:ख है, पापात्मा को सुख ही सुख है तो यह किसी दैवी शक्ति का अन्याय नहीं है, यह मनुष्य के भीतर रहने वाले दैवभाव-विवेक का फल है। जिसे विवेक होगा, वह सुख अकेले भोगते समय अपराध का अनुभव करेगा ही। वह गति तो चाहेगा, पर गलत ढंग से प्रगति नहीं चाहेगा, वह गलत निर्णय लेकर भी फिर सही निर्णय लेगा। इसीलिए उसकी राह न एकदम सीधी होगी न एकोन्मुख होगी। वह बराबर सोचता रहेगा कि कहीं मेरा प्राप्य दूसरे का प्राप्य छीन कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो नहीं है, कहीं किसी अन्यायी से समझौता करके तो यह नहीं मिला है ? और उसे बपु का लाभ नहीं मिलेगा ।

अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलमन्दिरम् ।
अनुल्लंघ्य सतां मार्गे यत्स्वल्पमपि तद् बपु ।।

विवेकी पुरुष के लिए दुःख अनिवार्य है । इसका अर्थ यह नहीं है कि महाभारत में पुण्य के लिए कोई अभिप्रेरणा नहीं हैं, पाप के लिए अभिप्रेरणा है, अधर्म के लिए अभिप्रेरणा है या कि महाभारत दुःखवाद का प्रतिपादन करता है । महाभारत पापी से उसके पाप का परिणाम भोगाता है, पुण्यात्मा से उस के पुण्य का परिणाम भोगाता है, परन्तु यह भी पहचानता है कि काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य, इन छः आसुरी सम्पत्तियों की विशेषता है कि इनमें आशुकारित्व है, तुरन्त कुछ समय तक कुछ कर देने की, तुरन्त भभक उठने की, तुरन्त तृण की आग की तरह फैल जाने की क्षमता है । सत्य अहिंसा आदि दैवी सम्पत्तियों में चिरकारित्व है, देर से देर तक करते रहने की क्षमता है । एक वार राह छूट जाय तो फिर राह दिखाने की क्षमता है । मनुष्य को दोनों से किसी के वरण की स्वतन्त्रता है : वह उत्कर्ष का नैरन्तर्य और सम्पूर्णता चाहता है या वह एक अधूरा और अल्पकालिक उत्कर्ष चाहता है । सम्पूर्णता का वरण करने वाला व्यक्ति अपने लिएं उत्कर्ष नहीं चाहेगा और दूसरे को भी उत्कर्ष चाहिए, यह सोचेगा । महाभारत बड़ी मछली के छोटी मछली के प्रति न्याय (मत्स्य न्याय) का यथार्थ पहचानता है, पर उसे वह मनुष्य का रास्ता नहीं मानता । योग्यतम के अति जीवन का अर्थ अगर यह है कि आसुरी सम्पत्ति के बल से कोई योग्यतम होगा तो टिकेगा, शेष नहीं टिकेंगे, तो महाभारत को यह नहीं स्वीकार है, महाभारत तितिक्षा को योग्यता की कसौटी मानता है । सुख और दुःख झेलने की क्षमता न हो तो कैसी योग्यता, कैसी शक्ति । भारतीय प्रतिभा कभी भी कर्ण या भीम को नायक नहीं स्वीकार करेगी, वह अर्जुन को भी नायक नहीं स्वीकार करेगी, हनुमान, लक्ष्मण और भरत को भी नायक नहीं स्वीकार करेगी, क्योंकि इन सभी में पौरुष है, निष्ठा है, अनेक गुण हैं, परन्तु नायक से जो यह अपेक्षा की जाती है कि वह आत्म और सर्व में भेद न करे, वह आत्मीय और अनात्मीय दोनों की चिन्ता करे, वह जितना निठुर हो अपनी समता में, उतना ही मृदु हो अपनी सर्व चिन्ता में, वह अपेक्षा इनसे नहीं पूरी होती। राम नायक हैं, वह गन्धमादन पहाड़ नहीं ला सकते, सींक के वाण पर हनुमान को बिठा कर लंका नहीं भेज सकते, बारह वर्षों तक निरन्तर जाग कर पहरा नहीं दे सकते, पर वह सबकी सुधि रखने के कारण और सबसे निरपेक्ष रहने के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण नायक हैं। युधिष्ठिर में न अर्जुन का पराक्रम है, न भीम का बल है, न कर्ण की दानशीलता है, न भीष्म का त्याग, पर वह नायक हैं, क्योंकि वह सब की कमजोरी समझ सकते हैं, अपनी भी कमजोरी समझ सकते हैं, सबका दुःख समझ सकते हैं और यह भी समझ सकते हैं कि प्राप्य की माँग न करना कायरता है, पर दूसरे के प्राप्य पर लोभ मनुष्य के सत्य के साथ घात है। महाभारत वीर गाथा नहीं है, युद्ध-गाथा भी नहीं है, वह मनुष्यत्व की कठिन यात्रा का काव्य है। इस यात्रा में बार-बार अन्धकार घिरता है, कुछ नहीं सूझता है, पर एक दिया उस अन्धकार से निष्कम्प भाव से जूझता रहता है—उसकी दीवट सत्य की है, उसमें तेल तप का है, बत्ती करुणा की है, लौ क्षमा की है। बड़े यत्न से वह दिया जलाया जाता है, क्योंकि न इतना तप आदमी संचित कर पाता है, न इतना दृढ़ आधार सत्य का उसके पास खड़ा हो पाता है, न इतनी करुणा उससे पूरी जाती है, न इतनी क्षमा (अविकृत क्षमा) उसमें अपने को जला कर दिपती रह सकती है। तब भी अन्धकार की चुनौती है मनुष्य को दिया जलाना ही है।

सत्याधारस्तपस्तैलं दया वर्ति: क्षमा शिखा।
अन्धकारे प्रवेष्टव्ये दीपो यत्नेन वार्यताम्॥

अन्धकार में खो नहीं जाना है, अन्धकार हो नहीं जाना है। महाभारत बार-बार घेरने वाले अन्धकार को, बार-बार पीडित करने वाले दुःख को चुनौती मानता है, और वह दुःख को चीरना चाहता है, पर दुःख से गुजर कर, दुःख से कतरा कर नहीं, मना कर नहीं।

इसी अर्थ में मुझे लगता है महाभारत दुःख की सही पहचान का और इस पहचान के द्वार से सम्पूर्ण जीवन की पहचान का काव्य है। इस पहचान में अपने-आप दूसरी चीजें छोटी हो जाती हैं, अर्थहीन वे नहीं होतीं, क्योंकि उनके रहते ही बड़े अर्थ का बड़प्पन दिखता है। जीवन में भय का भी स्थान है, अभय का भी—जब तक भय उपस्थित न हो, तब तक भयभीत रहना चाहिए अर्थात् चिन्तित रहना चाहिए कि भय आ सकता है पर भय उपस्थित हो जाय तो अभय हो कर उस भय का नाश करना ही मनुष्यत्व है।

भीतवत्संविधातव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्त्तव्यमभीतवत्॥
(शा० प० १४०।२३)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन में काम का भी स्थान है निष्काम का भी, क्योंकि काम से ही निष्काम में पहुँचा जा सकता है। इसमें लोभ का भी स्थान है, प्रीति का भी, क्योंकि लोभ ही स्वार्थ की निवृत्ति के बाद प्रीति बन जाता है। ये सभी जीवन में गति के क्रिया के प्रेरक होते हैं पर ये सभी दुःख बन जाते हैं क्योंकि समता और सन्तुलन दोनों बनाये रखना मनुष्य के लिए कठिन है। तब दुःख का तीव्र अनुभव ही दुःख से मोक्ष कराता है। महाभारत में तीन उपमाएँ दी गयी हैं: एक सींग की, दूसरी केंचुल की, तीसरी वृक्ष की। मृग की सींग बढ़ती है पुरानी हो जाती है और फिर मृग उसे झाड़ कर अलग कर देता है। साँप केंचुल उतार देता है, किनारे का वृक्ष नदी में ढह जाता है तो पक्षी उसे छोड़ देते हैं, न की मृग को अपनी झड़ी हुई सींग का मोह होता है, न साँप को अपने निर्मोक माँ केंचुल से। न पक्षी को अपने बसेरे से जीवन की माँग है कि दुःख को पकाये, भोगे और फिर से इसी प्रकार से छोड़ दे :

यथा रुरुः शृंगमयो पुराणं
हित्वा त्वचं वाप्युरगो यथा च।
विहाय गच्छत्यनवेक्ष्य मार्गं।
तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम्।
(शा० प० २१९।४८)

सींग की तरह ही, चर्म की तरह ही दुःख एक बचाव है, पर वह मूल अस्तित्व नहीं है, मूल अस्तित्व तो दुःख की चिन्ता न करने वाला जीवन है। इस प्रकार महाभारत व्यक्ति-दुःख से जानपद दुःख तक, जानपद दुःख से जीवन के अव्यय भाव तक यात्रा कराता है, वह दुःख को पड़ाव मानता है, गन्तव्य नहीं।

अगले अध्याय में उसी अव्यय भाव की चर्चा करूँगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्याय ३

सर्वभूतेषु येनेकं भावमव्ययमीक्षते

महाभारत का अव्यय भाव

महाभारत की पीड़ा की बात करते समय मैंने यह चर्चा की थी कि महाभारतकार व्यास श्रीकृष्ण के प्रकाशमय व्यक्तित्व से अभिभूत हैं। वह सबको टूटते देखते हैं, हारते देखते हैं, झुकते देखते हैं, कहीं न कहीं पछताते देखते हैं, सचाई के आगे प्रतिहत होते देखते हैं, पर कृष्ण को उन्होंने कभी पछताते नहीं देखा, रोते नहीं देखा, घबराते नहीं देखा, जय-पराजय क्या है, इसकी बिल्कुल उपेक्षा करते देखा और मृत्यु की वेला में भी वैसे ही अनुद्विग्न रहते देखा। जरा का तीर लगा, जरा का उन्होंने उपकार माना कि नरदेह की निष्कृति बन कर बालि जरा बन कर आया है। एकलव्य का पुत्र पूरी क्षत्रिय जाति के दम्भ का प्रतिकार लेने आ गया है, इसे ओडो, बड़े ऊँचे मन से इस तीर का वरण करो, इस विद्ध जीवन के क्षण का वरण करो। व्यास ने श्रीकृष्ण के इस सर्वोपेक्षी और सर्वापेक्षी, सबकी उपेक्षा करने वाले पर सब की अपेक्षाओं को समझने वाले सत्य से रस ले कर अपनी रचना का बिरवा रोपा।

महाभारत में वृक्ष का बिम्ब बार-बार आता है। पहले व्याख्यान में मैंने मृत्युद्रुम और धर्मद्रुम की बात की थी। पर दोनों दो नहीं हैं, एक ही महावृक्ष है, जिसमें १८ पर्व हैं, पोर हैं, हर पर्व में अलग रस है, सबसे अधिक मीठा रस सबसे परिपक्व रस महावृक्ष के अन्तिम पर्वों में है—शान्ति, आश्वमेधिक मौसल महाप्रस्थान और स्वर्गारोहण पर्वों में है। मैंने ऊपर में यह भी कहा कि पण्डित पहले यही रस चखते हैं, पहले वे शान्ति पर्व पढ़ने पर बल देते हैं। पूरा रूपक इस महावृक्ष का इस प्रकार है:—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संग्रहाध्यायबीजो वै पौलोमास्तीकमूलवान् ।
सम्भवस्कन्धविस्तारःस भारण्यविटंकवान् ॥
आरणीपर्व रूपाढ्यो विराटोद्योगसारवान् ।
भीष्मपर्व महाशाखो द्रोणपर्व पलाशवान् ॥
कर्णपर्वसितैः पुष्पैः शल्यपर्व सुगन्धिभिः ।
स्त्रीपर्वैषीकविश्रामः शान्तिपर्व महाफलः ॥
अश्वमेधामृत रसः त्वाश्रमस्थानसंश्रयः ।
मौसलः श्रुतिसंक्षेपः शिष्टद्विजनिषेवितः ॥
सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति ।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः ॥

(आ० प० १।८८-९२)

अर्थात् महाभारतवृक्ष का बीज है संग्रहाध्याय, जड़ है पौलोम और आस्तीक स्कन्ध या तना है सम्भव पर्व (ये सभी आदि पर्व के अंग हैं), सभा पर्व और अरण्य पर्व तना का विस्तार है—उसमें बने हुए कोटर ही पक्षियों के, सर्पों के आश्रय बन जाते हैं। आरणि पर्व (वन पर्व का एक अंग है) इसकी गाँठ है, विराट् और उद्योग पर्व इस वृक्ष के हीर हैं, (भीतर के सार-भाग हैं, पके हुए हिस्से हैं)। भीष्म पर्व इसकी शाखाओं का विस्तार है, इन्हीं शाखाओं में एक अद्वितीय शाखा है जो ठीक ऊपर को चली जाती है—श्रीमद्भगवद्गीता, द्रोण पर्व पत्रजाल है। कर्ण पर्व पुष्प है, शल्य पर्व सुगन्धि, स्त्री पर्व और ऐषीक पर्व फूल का झरना है शान्ति पर्व फल है, अश्वमेध पर्व फल का अमृत रस है, आश्रमवासिक पर्व बैठ कर विश्राम करने की जगह है। मौसल पर्व रसास्वाद की अनुभूति है। संसार के श्रेष्ठ कवि इस वृक्ष पर सदा अवलम्बित रहेंगे। यह वृक्ष उनकी रचना का आश्रय होगा। यह भारतद्रुम पर्जन्य की तरह प्राणियों को अक्षय तृप्ति देने वाला होगा।

महाभारतद्रुम का प्रेरणा-स्रोत भी वृक्ष है, वह ऊर्ध्वमूल अश्वत्थ है।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

(भीष्म प० ३९।१, श्रीमद्भगवद्गीता १५।१)

यह सृष्टि वृक्ष है ऊर्ध्व से नारायण अर्थ लिया जाता है। यह ऊर्ध्व मूल ऊपर, नीचे इसकी शाखाएँ हैं। शाखा है ब्रह्मा छन्द अर्थात् वेद, प्रथम सिद्धान्तों का ज्ञान ही इसका पत्र जाल है, इसे जो जान ले वही वेदविद् है। यह अव्यय है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थात् बार-बार काटा जाता है बार-बार फिर बढ़ जाता है। इसकी शाखाएँ ऊपर-नीचे, चारों ओर फैली हुई हैं, सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुणों के प्रसार के रूप में और भाँति-भाँति के ऐन्द्रिय विषय ही इसकी नयी कोपलें हैं, इसकी जड़ें एक-दूसरे से गुँथी हुई दूर तक चली गयी हैं, कर्मजाल में बँधी हुई।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्तानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्य लोके ॥

(तदैव २)

इसी वृक्ष को बार-बार काटने की बात भी गीता में मिलती है। इस अनासक्ति की तीक्ष्ण धार से इसे काटो तभी परमार्थ पद की तलाश कर सकोगे। यह बात कुछ परस्पर विरुद्ध लगती है कि अव्यय वृक्ष को कैसे काटें और फिर क्यों काटें। काटने का अर्थ समझना है—अलग-अलग करके समझना है।

स्त्री पर्व में विदुर के मुख से संसार वृक्ष पूरा गहन वन हो जाता है (स्त्री प० अध्याय ५)। हिंस्र पशुओं से समाकुल, घोर अँधेरा कहीं राह नहीं, उस वन के चारों ओर एक जाल तना हुआ, एक स्त्री उसके सूत्र हाथ में लिये हुए। बड़े-बड़े सर्प वृक्षों से लटकते हुए, बीच में घास-फूस में ढँका जाने कब का कुआँ। इस वन में भटकते-भटकते विचारा यात्री कुएँ में गिर पड़ता है, पर लताओं में फँस कर ऊपर अटक जाता है। पैर ऊपर, सिर नीचे—उस कुएँ के ऊपर हाथी खड़ा, जिसके छः मुँह बारह पैर, आधा काला, आधा सफेद। और नीचे महानाग बैठा हुआ। लता-वितार में मधुमक्खियों के छत्ते से मधु टपक रहा है, यात्री भय से घिरा हुआ है, देख रहा है जिस पेड़ की डाल में अटका हुआ है, उसकी जड़ें काले और सफेद चूहे काट रहे हैं। मधुमक्खियाँ अलग भिनभिना रही हैं। पर मधु की तरस ऐसी है कि जाती नहीं, मृत्यु उपस्थित रहने पर भी।

तथापश्यत् वनं घोरं समन्ताद् वागुरावृतम्।
बाहुभ्यां सम्परिक्षिप्तं स्त्रिया परमघोरया ॥
पंचशीर्षधरैर्नागैः शैलेरिव समुन्नतैः।
नभस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम् ॥
वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः।
वल्लीभिस्तृणछन्नाभिर्दृढाभिरभिसंवृतः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ।
विलीनश्चाभवत् तस्मिन् लतासन्तानसंकुले ।
मनस्यश्च यथा जातं वृन्तवद्ध महाफलम् ।
स तथा लम्बते तत्र ह्यूर्ध्वपादो ह्यधः शिराः ॥
अथ तथापि चान्योस्य भूयो जात उपद्रवः ।
कूपमध्ये महानागमपश्यत् महाबलम् ।
कूपवीनाहवेलालामपश्यत् महागलम् ॥
ऐडूक्यं कृष्ण शुक्लं च द्विषट्क पदचारिणम् ।
क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ।
तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः ।
नाना रूप मधुकरा घोररूपा भयावहाः
आसते मधु संवृत्य पूर्वमेत निकेतजाः ।
तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते तदा ।
आलम्बिमानः स पुमान् धारां पिबति सर्वदा ॥
न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य संकटे
अभीप्सति तदा नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः ॥

(स्त्री० प० ५।८-२०)

विदुर ने रूपक को समझाते हुए बतलाया कि पेड़ों में लटके हुए साँप व्याधियाँ हैं, स्त्री जरा है, कुआँ देह है, भीतर फुफकारता हुआ नाग मृत्यु है, जिस लता में यात्री लटका हुआ है, वह जीविताशा है, कुएँ के किनारे खड़ा हाथी संवत्सर है, ६ ऋतुएँ उसके मुख हैं, १२ महीने पैर, सफेद और काले चूहे दिन और रात हैं, मधुमक्खियाँ कामनाएँ हैं, मधु काम-रस है।

(स्त्री० प०, अध्याय ६)

इस गहन कान्तार से और इस भयावृत कूप से उद्धार कोई दूसरा नहीं करता, स्वयं ही करना पड़ता है।

वृक्ष का यह अभिप्राय दोहरा अर्थ रखता है। यह छाया देता है, आश्रय देता है, फल देता है, रस देता है, पर यह यदि मोह बन जाय, आसक्ति बन जाय तो दुःख देता है, यह भय का स्थान वन जाता है। वृक्ष न हो, कुआँ न हो, मधुस्रवा लता न हो तो निर्भय होने की अभिप्रेरणा कहाँ से मिले ? सृष्टि की सुन्दरता फँसाव बनने के लिए नहीं है, वह आमन्त्रण है जिसे स्वीकार करना चाहिए पर उससे बँधना नहीं चाहिए । महाभारत भी एक दूसरे प्रकार का सृष्टि वृक्ष है जो आमन्त्रण देता है 'इसे ग्रहण करो' पर अपेक्षा रखता है कि इसके किसी भी अंश से बँध न जाओ। पूरे वृक्ष को देख लो, समझ लो, उसका फल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चख लो, उसके नीचे छाँव लो, पर चल पड़ो, शास्त्र सिर का भार न बने, शास्त्र को गति की प्रेरणा मानो, गति शास्त्र में नहीं है, तुम में है। शास्त्र अनुष्ठान की विधि देता है। अनुष्ठाता तो तुम हो।

श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए गीता के बारहवें अध्याय में अपने को भी अश्वत्थ कहा है, इसी से गाँवों में पीपल के पेड़ को वासुदेव कहते हैं। श्रीकृष्ण अपने प्रिय मित्र उद्धव को ज्ञान-दीक्षा देकर विदा कर देते हैं। यह नहीं कहते कि तुम मेरे पास पड़े रहो, मेरी सेवा करते रहो। गोपियों को महाभाव की दीक्षा देकर चले जाते हैं, इधर मुँह भी नहीं करते। इतने निर्मम हैं कि अर्जुन को युद्ध में प्रेरित करके, पग-पग पर रक्षा करके, विजय मिला करके एक ऐसी स्थिति में डालते हैं कि उनका गाण्डीव व्यर्थ हो जाता है, अस्त्र विद्या का गर्व चूर हो जाता है, जिस गांडीव की निन्दा वह युधिष्ठिर के मुँह से सुन कर उन्हें मारने के लिए उद्यत हुए, वही गांडीव बेकार हो जाता है। यह दोस्ती है या दुश्मनी। अर्जुन ने कहा भी कि हरि मुझ से छल करके चले गये और मुझे एकदम शव बना कर रख गये, लुटने के लिए।

क्या अव्यय या अक्षर का यही कार्य है कि जो उसे साधने चले, उसका व्यय करा दे, उसका क्षरण करा दे, उसे बूँद-बूँद निचोड़ दे, तिल-तिल काट दे? यही कृपा है उस सनातन अव्यय भाव की? यह प्रश्न बार-बार मन को कुरेदता है और महाभारत से बड़ा डर लगता है, लगता है इस जंगल में तुम्हारी गाँठ में कुछ रह नहीं जायेगा, तुम्हारी पूरी तलाशी ली जायेगी, तुम्हारी नंगा-झोरी कर दी जायेगी, तुम केवल तुम रह जाओगे, केवल तुम। श्रीमद्भगवद्-गीता वस्तुतः इसी प्रश्न का विस्तृत उत्तर है।

पश्चिम के विंस्टरनित्स जैसे विद्वानों ने श्रीमद्भगवद्गीता को स्वतन्त्र अर्थात् महाभारत से अलग ग्रन्थ माना है और सम्भावना की है कि बाद में इसे महाभारत में समाविष्ट कर लिया गया है। युद्ध में अठारह अध्याय सुनना-सुनाना असम्भव है और महाभारत का जीवन-दर्शन श्रीमद्भगवद्गीता से बिल्कुल अलग है; क्योंकि शेष महाभारत में श्रीकृष्ण का परब्रह्म प्रस्फुटित नहीं है। ये तर्क कितने बचकाने हैं, यह इसी से सिद्ध है कि इन लोगों ने काव्य को घटना-विवरण या हूबहू अभिलेख मान लिया है। श्रीमद्भगवद्गीता महा-भारत के काव्यार्थ के साथ अन्वित है, जैसा कि पहले मैं कह चुका हूँ, महा-भारतकार घटनाओं पर बहुत गहरे स्तर पर विचार करते हैं, उनकी दृष्टि में महाभारत की घटनाएँ तो पहले ही घट चुकी थीं, वह देख चुके थे कि यह होने वाला है और घटनाओं के घट जाने के बाद भी उनकी दृष्टि में घटनाएँ अतीत नहीं हैं, वे वर्तमान हैं और भविष्यत् भी हैं। क्योंकि इति ह आस—ऐसा ही होता आया है, ऐसा ही होता जायेगा। व्यास नारायण, नर और नरोत्तम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की नित्य सम्भावना की विभूति के रूप में अपने ग्रन्थ को देखते हैं। श्रीमद्-भगवद्गीता श्रीकृष्ण का उपदेश नहीं है, वह महाभारत की गहरी वास्तविकता का साक्षात्कार है, श्रीकृष्ण ही वह साक्षात्कार करा सकते हैं, अर्जुन ही वह साक्षात्कार कर सकता है और युद्ध की विभीषिका में, मृत्यु की उपस्थिति में, सामूहिक मृत्यु की उपस्थिति में ही वह साक्षात्कार सम्भव हो सकता है। अर्जुन के हाथ से गाण्डीव जब तक खिसकने को न आये, जब तक शरीर का रोम-रोम भयंकर दावानल की लपटों से नहीं, उसके भय से जलने न लगे, जब तक भीतर का अभिमान चुक न जाय कि मैं यह कर सकता हूँ, मैं यह करूँगा, तब तक अव्यय भाव की दीक्षा ली नहीं जा सकती। परन्तु भय बड़ा होना चाहिए और उसका आघात ऐसा होना चाहिए कि लगे मैं ही नहीं, मेरा आस-पास, मेरे आस-पास के लोग सब जलने जा रहे हैं। अर्जुन का निर्वेद छोटे नर का निर्वेद नहीं है। नरोत्तम के सहचर नर का निर्वेद है। निर्वेद तो दुर्योधन को भी होता है, जब युधिष्ठिर उसे—उसके जीवन को गन्धर्व-राज चित्रसेन के बन्धन से छुड़वा देते हैं, जब कर्ण पहले ही पलायन कर चुके हैं। चित्रसेन गन्धर्व ने अर्जुन से स्पष्ट कहा कि दुर्योधन पाप-बुद्धि से वन में आया, मैंने तुम लोगों के हित की कामना से बाँधे रखा है, पर युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने उन्हें छुड़ाया और जब दुर्योधन युधिष्ठिर के सामने गये तो युधिष्ठिर ने इतना ही कहा :

मा स्म तात पुनः कार्षीरीदृशं साहसं क्वचित्
न हि साहसकर्तारः सुखमेधन्ति भारत ॥
स्वस्तिमान् सहितः सर्वैर्भ्रातृभिः कुरुनन्दन ।
गृहान् व्रज यथाकामं वैमनस्यं च मा कृथाः ।

(वन प० २४६।२२-२३)

"भाई, तुम ऐसा दुस्साहस न करना, इस प्रकार के दुस्साहस करने वाले कभी सुखी नहीं होते, स्वस्ति भावना ले कर भाइयों के साथ जब घर जाना चाहो जाओ, मन में वैमनस्य भाव न रखना"। दुर्योधन को युधिष्ठिर की यह निश्छल उदारता बड़ी भारी पड़ी। लौटे रास्ते में कर्ण ने बधाई दी कि तुम गन्धर्वों को जीत कर आ गये, दुर्योधन से कहा कि गन्धर्वों ने मुझे, साथ की स्त्रियों को बाँध रखा था, उसी रूप में उन्होंने हमें युधिष्ठिर को सौंपा। जिसका मैंने जीवन भर तिरस्कार किया, जिनसे मैं शत्रुता करता रहा, उन्होंने ही मुझे छुड़ाया, मुझे प्राण-दान दिया। युद्ध में मैं मारा जाता तो कहीं अच्छा होता, इस प्रकार शत्रु से प्राण-दान पा कर जीना तो जीना नहीं है। मैं यहीं उपवास करके प्राण छोड़ दूंगा, तुम लोग लौट जाओ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्त्रीसमक्षमहं दीनो बद्धः शत्रुवशं गतः ।
युधिष्ठिरस्योपहृतः किन्तु दुःखमतः परम् ॥
ये मे निराकृता नित्यं रिपुर्येषामहं सदा ।
तैर्मोक्षिताहं दुर्बुद्धि दत्तं तैरेव जीवितम् ।
प्राप्तः स्यां यद्यहं वीर वधं तस्मिन् महावने ।

(वन प० २४९।६-९)

दुःशासन, कर्ण, शकुनि सभी समझाते हैं, पर दुर्योधन ने मरने का निश्चय कर लिया तो कर लिया। इतने में दानवी शक्तियों को चिन्ता हुई, उन्होंने कृत्या का अनुष्ठान किया, कृत्या पैदा हुई, उससे कहा कि जाओ दुर्योधन को लाओ। दुर्योधन को सम्बोधित करके उन्होंने कहा—तुम आत्महत्या क्यों करते हो, बड़ा तप करके हमने महेश्वर से तुम्हें पाया, तुम्हारे शरीर का ऊपरी भाग वज्र है। पृथ्वी पर तुम्हारी सहायता करने के लिए हजारों दानव तैयार हैं। देवताओं को तो पाण्डव सहारा मिले हुए हैं, पर हमारी गति आप हैं, आप हमें ऐसे कैसे छोड़ देंगे ? हम अनेक वीरों के भीतर कायननुप्रवेश करेंगे। कर्ण के भीतर तो नरकासुर की आत्मा पहले से ही प्रविष्ट हो चुकी है। और आप पाण्डवों का वध कर सकेंगे। दुर्योधन का कृतक वैराग्य नष्ट हो गया (वन पर्व, २५२ अध्याय) क्योंकि वह वैराग्य और उसकी लज्जा दोनों क्षुद्र थे, उसके मन में विपुल था ही नहीं। दुर्योधन के लिए धर्म भी यही था कि इसके छल से मैं जनमत अपने पक्ष में करूँ! पाण्डवों की जो छवि बनी हुई है, उससे अधिक अच्छी छवि बनाऊँ, लोग उन्हें भूल जायें। वह यज्ञ करता है, दान देता है, राज्य की व्यवस्था करता है, यज्ञ में युधिष्ठिर को निमन्त्रण भी पढ़ाता है, परन्तु उसके सारे व्यापार ईर्ष्या के कलुष से प्रेरित हैं। उसका मन विपुल की चिन्ता कर ही नहीं सकता। दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद् में यही तो अन्तर है कि दैवी सम्पद आर्जव (सिधाई) नहीं छोड़ सकती, इसीलिए उसे अधिक क्लेश होता है। दैवी सम्पद जिसे मिलती है, उसका स्वभाव अलग होता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसकी पहचान करायी, तुम इस अन्तर को समझो, तुम दैवी सम्पद् लेकर पैदा हुए हो, दैवी सम्पद् का लक्षण है—अभय, अन्तःकरण की निर्मलता, ज्ञान और एकाग्रचित्तता, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन, (दूसरों की निन्दा से विरक्ति), भूत दया, अलोलुपता, मृदुता, लज्जा और अचापल (चपल चेष्टा से विरक्ति), तेज, क्षमा, धैर्य, अद्रोह, अपने भीतर पूज्य और सम्मान्य होने का भाव न होना। इसके उलटे आसुरी सम्पद् की विशेषता है, दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, परुषता और अज्ञान।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभयं सत्त्वसंशुद्धि ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं, दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥
दम्भो दर्पोभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चापि जातस्य पार्थसम्पदमासुरीम् ॥
दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
या शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोसि पाण्डव ॥

(भीष्म पर्व ४०।१-५)
(श्रीमद्भगवद्गीता १६।१-५)

दुर्योधन और कर्ण का मोहावेश आसुरी सम्पत्ति का मोहावेश है। इस मोहावेश में इसी प्रकार का चिन्ता-चक्र चलता है। आज यह पाया, कल यह पायेंगे, आज मेरे पास इतना है, कल इतना और होगा। मैंने उस शत्रु को मार दिया, कल दूसरों को नष्ट करूँगा। मैं ईश्वर हूँ, सिद्ध हूँ, बलवान हूँ, और सुखी हूँ।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि भविष्यति पुनर्वनम् ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान सुखी ॥

(भी० प० ४०।१३-१४)
(श्रीमद्भगवद्गीता १६।१३-१४)

इसके विपरीत दैवी सम्पद् में मेरा यह हो जायेगा, वह हो जायेगा, मैं प्रभु हूँगा, दूसरे दानव होंगे, ऐसा भाव नहीं होता, पर यह भी नहीं होता कि उत्थान या उद्यम की बात या पराक्रम की बात व्यर्थ हो जाती है। बस अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए न हो, अपना बल सबका बल न हो, अपना धन सबका धन हो, प्रभु और प्रभुता का सम्बन्ध न हो, सहभोक्ता, सहकर्मा का सम्बन्ध हो; होने का भाव हो, पाने का भाव न हो।

उत्थातव्यं जागृतव्यं बोधितव्यं मुहुर्मुहुः ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥

सजग रहते हुए सम्पूर्णता की समझ रखते हुए उद्यत हो, अविचल मन से सोचे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि कार्य हो कर रहेगा। जिसको पा कर दूसरे जियें, समस्त प्राणी जियें, उसी का जीवन सार्थक है, उस वृक्ष की तरह जिसके फल पक गये हैं—

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय।
पक्वं द्रुमभिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत्॥
(उ० प० १३३।४३)

दुर्योधन से कहीं अधिक कई बार धृतराष्ट्र टूटते हैं, पर उनका भी टूटना अपनी छोटी आशा तक सीमित रहता है, विदुर और व्यास उनसे कितनी बार कहते हैं, पुत्रमोह में तुम न्याय और धर्म की वृद्धि का परित्याग कर रहे हो। संजय तो उन्हें श्रीकृष्ण तत्त्व का उपदेश भी देते हैं कि इस विराट् सत्य को समझो, परन्तु उनकी बुद्धि फिर नारायण भाग से अलग बहक जाती है, इसीलिए वह मनुष्य के शरीर में **नरोत्तमता** की अवधारणा नहीं कर सकते। वह मनुष्य जन्म को ही धिकतारते हैं कि सब दुःख तो इस मनुष्य देह के कारण हैं, और इस मनुष्य देह के जुड़े मानुष्य भाव (ममता) के कारण है।

धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुषेषु परिग्रहे॥
यतोमूलानि दुःखानि सम्भवन्ति मुहुर्मुहुः॥
(स्त्री० प० ८।६)

वह अन्धे वस्तुतः इस माने में अधिक हैं कि सब कुछ देख कर भी नहीं देख पाते। अन्त में आश्रम में रहते हुए भी तब तक गत-मोह नहीं होते जब तक व्यास उन्हें उनके पुत्रों का दर्शन नहीं करा देते, और तभी वह सब मोह छोड़ कर कठोर तप से अग्नि धधकाते हैं और उसी में आत्मसात् हो जाते हैं।

दुर्योधन, धृतराष्ट्र, अर्जुन और युधिष्ठिर दैवी सम्पद् में उत्तरोत्तर समृद्ध हैं, वे वस्तुतः मनुष्य की चेतना के विकास के चार स्तर हैं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ही क्यों उपदेश दिया, उसका एक कारण है। वह नर के सुहृद् हैं, वह इन्द्र के अंश के प्रति इसलिए सदय हैं कि इन्द्र नरत्व या पौरुष या पराक्रम के देवता हैं, साथ ही अन्तरिक्ष के देवता हैं, भीतरी उथल-पुथल के देवता हैं। ऐसे सक्रिय चित्र में ही पात्रता आती है विपुल का भाव प्राप्त करने की। युधिष्ठिर नर की भूमिका से ऊपर उठे हुए हैं, वह विपुल-भाव प्राप्त कर चुके हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि बनते हैं, उपनिषदों की भाषा में सोचें तो उलटी भूमिका है। इन्द्रियाँ जहाँ घोड़े हों, शरीर रथ हो, आत्मा रथी हो और बुद्धि सारथि, उससे अलग यहां बुद्धि ही और वह भी संशित बुद्धि रथी है, आत्मा सारथि है। पर यही वांछनीय भूमिका है। बुद्धि का सारथि होना साधारण व्यक्ति के लिए ठीक है, जिसे महाभारत में न लड़ना हो। महाभारत अर्थात् सम्बन्धों के महाजाल में से निकलना हो, उसमें बुद्धि के सारथि होने से काम नहीं चलेगा, वहाँ आत्मा को सारथि बना कर बुद्धि को केन्द्रस्थ होना पड़ेगा। श्रीकृष्ण ऐसे रथी के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सारथि हैं जो उनका अनुगत है, उसे निरन्तर यह प्रतीति है कि मैं श्रीकृष्ण का अनुगत हूँ। वह उपदेश देने का समय चुनते हैं, या समय ही उपदेश का क्षण चुनता है, अनुगत होने की भावना ऐसी तीव्र हो कि लगे, और कोई उपाय नहीं है, तब उस अनन्य अनुगत को पात्रता मिलती है। श्रीमद्‌भगवद् गीता को उपनिषद् रूपी गउओं का दुग्ध कहा गया है, श्रीकृष्ण दुहने वाले हैं और अर्जुन बछड़े हैं जिनके भूखे हुए बिना या जिनके लिए गउओं के आकुल हुए बिना, जिनके कारण गउओं के पिन्हाये बिना दूध नहीं उतरता। उपनिषद् रहस्य विद्या है, जीवन-मृत्यु के रहस्य का अनुसन्धान है, पोथी द्वारा नहीं, आचार द्वारा, एकाग्र ध्यान द्वारा या ऋषियों की सेवा के द्वारा। वह जड़ ज्ञान नहीं है, वह सजीव ज्ञान है जो वत्सभाव का साकांक्ष है। आकुलता जब दोनों ओर से हो तभी दूध उतरेगा। महाभारत में गुरु, पितामह, भाई-बन्धु, रिश्तेदार सामने हैं और दिख रहा है कि महाकाल का नृत्य होने वाला है, तभी वह पारस्परिक ज्ञान जो लुप्त-सा हो गया, पात्र पाता है अर्जुन में। अर्जुन ऐसे पात्र के, अर्जुन ऐसे जिज्ञासु के बिना गीता का उपदेश असम्भव है। अव्ययभाव की सिद्धि व्यय की चिन्ता, महान् व्यय की चिन्ता से गुजरे बिना कैसे सम्भव है? अव्यय का अर्थ ही है व्यय के बाद—दिखने में सब कुछ व्यय हो जाने के बाद—कुछ बच रहना, अपने भाव का बच रहना।

परन्तु यह सिद्धि एक सोपान से दूसरे सोपान पर चढ़ते हुए मिलती है यकायक नहीं, यकायक मिले तो आदमी उसे ले कर ढह जाय। इन सोपानों का क्रम इस प्रकार है: पहले छः अध्यायों में त्वं अर्थात् साधारण जीव की समस्या उभारी जाती है, बीच के छः अध्यायों में तत् अर्थात् परब्रह्म की परम अपेक्षा' पर बल दिया जाता है और अन्तिम छः अध्यायों में असि अर्थात् 'त्वं' ही 'तत् है, इस ऐक्य या तादात्म्य की सिद्धि करायी जाती है। इस जीवन संघर्ष में रहते हुए, प्रपंच में रहते हुए जीवन का अव्यय भाव सीखा जाय तो सीखना है जैसा कि लोकमान्य तिलक ने कहा है—'ज्ञान भक्ति युक्त कर्मयोग ही गीता का सार है, उपनिषदों में वर्णित अद्वैत वेदान्त का भक्ति के साथ मेल करके उसके द्वारा बड़े-बड़े कर्मवीरों के चरित्रों का रहस्य या उनके जीवन-क्रम की उपपत्ति बतलाना ही गीता का सच्चा तात्पर्य है···भगवान् ने ऐसे ज्ञानमूलक, भक्ति प्रधान और निष्काम कर्म विषयक धर्म का उपदेश गीता में किया है कि जिसका पालन आमरण किया जाय, जिससे बुद्धि, प्रेम और कर्त्तव्य का ठीक-ठीक मेल हो सके, मोक्ष की प्राप्ति में कुछ अन्तर न पड़े और लोक-व्यवहार भी सरलता से होता रहे।' (श्रीमद्‌भगवद्‌गीता रहस्य—हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ४९३)।

पहले अध्याय में जीवन विषाद है' दूसरे अध्याय में उसका मिथ्या ज्ञान है, उसको काटने के लिए तर्क दिये जाते हैं, तीसरे में कर्म की अपरिहार्यता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझाई जाती हैं। चौथे में कर्म के दोष को दूर करने के लिए ममकार के त्याग की आवश्यकता बतलायी जाती है। इस अभ्यास पर बल दिया जाता है कि सोचना बन्द करो, मेरा हाथ है, मेरा द्रव्य है, बस सोचो, न मम न मम, कुछ भी मेरा नहीं। पूजा भी मेरी नहीं। संक्षेप में इस अध्याय में कर्ममात्र को यज्ञ बनाने पर बल है, यज्ञ के अर्थ का विस्तार है जिससे यज्ञ-व्यापार ही ब्रह्म हो जाय। पांचवें अध्याय में ब्रह्मार्पण के अभ्यास के बाद कर्म का सम्यक् न्यास समझाया जाता है, कर्म को ठीक जगह धरोहर के रूप में न्यास के रूप में रख दें, वह धरोहर सबकी हो जाय, इसके बिना केवल त्याग कितना भी प्रशंसनीय क्यों न हो सर्वजन मार्ग नहीं हो सकता। परन्तु यह कर्म संयास सब में एक ही है, यह बुद्धि आये बिना सम्भव नहीं होता, अतः समत्वयोग का उपदेश किया जाता है। समत्व का अर्थ आज के अर्थ में समानता नहीं है, गीता का आचार शास्त्र **समानता** की मूलावत्ता समता (अर्थात् तादात्म्य अर्थात् सब में एक चैतन्य के प्रवाह का अनुभव) अधिक मूल्यवान समझता है। इस समता के बिना सर्व से सर्वात्मा से जुड़ना सम्भव नहीं होता, इसके बिना कार्य में कुशलता भी नहीं आती। जो आदमी करता है, उसे तभी ठीक तरह से कर सकता है, जब वह इस बुद्धि से करे कि यह कार्य, यह रचना, यह शिल्प, यह खेती, यह व्यापार, यह धन्धा अकेले मेरे लिए नहीं है, अकेले मेरा नहीं है, यह सब के लिए है, इसे सब के लिए उपयोग्य होना चाहिए। इसे उत्कृष्ट होना चाहिए। यह समता आत्म संयम से अपने को आहार-विहार में संयत रखने से और अपने को अपनी अपेक्षा से इधर-उधर भटकने से रोकते हुए सधती है। तब जा कर त्वं तत्त्व साहस कर सकता है कि तत् तत्त्व के अभिमुख हो।

सातवें से बारहवें अध्याय तक ब्रह्म परिचय को घनिष्ठ किया जाता है। पहले ब्रह्मनिष्ठा जगत् में कैसे प्रतिफलित होती है, यह सातवें अध्याय में निरूपित है। जल में रस, सूर्य में प्रभा, वेदों में ओंकार, आकाश में शब्द, पृथिवी में गन्ध, प्राणियों में प्राण, तपस्वियों में तप, बलशालियों में बल, (शुद्ध बल—काम और राग से विवर्जित बल), धर्म का अविरोधी काम यह सब ब्रह्म है। 'वासुदेवः सर्वमिति' सब कुछ वासुदेव है, ऐसा समझ कर भजने वाला सबसे अधिक दुर्लभ होता है। वैसे तो जिस प्रकार की श्रद्धा से, जिस अंश को भजता है, उसकी पूर्ति होती है, परन्तु वास्तविक पूर्ति तो कृत्स्न (सम्पूर्ण) को भजने से ही होती है। जो अंश को भजता है, उसकी पूर्ति मात्र होती है। इसी बिन्दु पर संशय होता है। क्या क्षर, क्या अक्षर, क्या अन्त, क्या शान्त और मृत्यु पहले अध्याय में भय रूप द्वार बन कर आयी थी, अब आठवें में पराव बन कर आती है जीवन की ? मृत्यु का क्षण पूरे जीवन का हिसाब है। जो जीवन में पूर्ण के साथ सध गया, वह मृत्यु के क्षण में सधा दिखता है, शान्त दिखता है, जिसे वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मृत्यु के क्षण ध्याता है, वही उसका जीवन बनता है, क्योंकि मृत्यु ही जीवन की निरन्तरता की सही पहचान कराने वाला सूत्र है। इसी अध्याय में दो प्रकार की गतियाँ निरूपित हैं—एक लौटने वाली, एक न लौटने वाली।

नवें अध्याय में न लौटने वाली गति का उपाय है, जिसे पाकर मृत्यु के संसार में न आना पड़े, जीवन के अनन्त में एकाकारता हो जाये। यहीं बात त्वं से तत् की ओर मुड़ती है, सब को, अनन्त को मुझ में देखो, मैं अलग-अलग सब में नहीं हूँ। 'मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः'। जो लोग मुझे शरीरी मानते हैं, वे मेरा प्रभाव, निरपेक्ष परभाव नहीं जानते। वे मेरा सब के लिए होना, यह सनातन अव्यय भाव, अच्युत भाव नहीं समझते। जो मेरा पर-भाव जानते हैं, उन्हें यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण ही कर्म हैं, कर्म की स्वाधीनता हैं, मन्त्र हैं, घी की आहुति हैं, यज्ञ है, इज्म हैं, यजमान हैं। जो लोग इस दृष्टि से अनन्य दृष्टि से श्रीकृष्ण तत्त्व को पाना चाहते हैं, वे श्रीकृष्ण की चिन्ता बन जाते हैं। दसवें अध्याय में ब्रह्म की व्यापकता विभूतियों के उप-देश से प्रभावित होती है, समस्त सारवान् वस्तु श्रेष्ठ वस्तु ब्रह्मरूप है, उसकी ओर खिंचे तो यह अनुभव करके खिंचे कि हम ब्रह्माभिमुख हो रहे हैं। परन्तु अर्जुन को अभी आधा-आधा ही दिख रहा है, विभक्त-विभक्त दिख रहा है। वह सम्पूर्ण विराट् का दर्शन करना चाहते हैं और क्रमिक सोपान में श्रीकृष्ण उन्हें विराट् विश्व रूप का दर्शन कराते हैं, ग्यारहवाँ अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता का सबसे अधिक काव्यमय अंश है। यह रूप दुःसह है, इसमें अनेक एक हो गये हैं।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ११।१०)

जिसमें अनन्तता विश्वतोन्मुख हो, सब ओर अनन्तता हो और हजार सूर्य एक साथ उदित हों, उनकी जैसी आभा हो, वैसी आभा एक साथ उदित हो गयी हो, ऐसा है यह रूप।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी या स्याद् भासस्तस्य महात्मनः॥

(तदैव १२)

उसी शरीर में अनेक और विभक्त एकस्थ और पूर्ण हो गये हैं (तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा)। इस रूप में सब समाते जा रहे हैं, सारे वीर इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कराल वक्त्र में ऐसे समा रहे हैं जैसे पतिंगे दीपक के प्रकाश में समाते हैं, एक विचित्र आकर्षण है काल का। अर्जुन को विश्व रूप अभिभूत कर देता है, वह विराट् का साक्षात्कार करके भी विराट् की अनात्मीयता नहीं चाहता, वह अनात्मीयता से घबराता है, तुम पुत्र के लिए पिता ही बन कर उपस्थित हो, मित्र के लिए मित्र बन कर ही रहो, प्रिय के लिए प्रिय हो कर रहो, तभी तुम वहन किये जा सकते हो, इस रूप में तुम्हें वहन करना, तुम्हें सँभालना सम्भव नहीं है :

पितैव पुत्रस्य सखैव सख्युः ।
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

(तदैव ४४)

विश्व रूप के दर्शन से श्रीकृष्ण और आत्मीय हो जाते हैं और तब अर्जुन उनसे तादात्म्य प्राप्त कर सकते हैं। इसकी पात्रता बारहवें अध्याय में दृढ़ होती है। तब श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'अनन्य भाव से मुझे भजो, पर आवेश के साथ भजो, मैं तुम्हें मृत्यु संसार से खींच कर सनातन जीवन में प्रवेश करा दूंगा।'

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसार सागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥

अब आता है तीसरा सोपान जिसमें तादात्म्य की प्रक्रिया का निरूपण होता है, उस प्रक्रिया की बाधाओं का भी वर्णन होता है, उसके भटकावों का भी वर्णन होता है। तेरहवें में मनुष्य के शरीर को महत्त्व दिया जाता है, यही क्षेत्र है, भगवान् इसी को पा कर क्षेत्रज्ञ हैं, इन दोनों को जोड़ो, इस शरीर से उन्हें साधो। चौदहवें अध्याय से बाधाओं का वर्णन है, तीनों गुण बाधक हैं, सत्त्व भी बाधक है, सुख और ज्ञान भी बाधक है। जब तक मनुष्य इन गुणों को अपने से, अपनी वास्तविकता से अलग नहीं देखता, तब तक वह भक्तियोग से ब्रह्म कैसे होगा? इसी से पन्द्रहवें अध्याय में विशाल अनासक्ति का मन्त्र बतलाया जाता है कि तुम ऊर्ध्वमूल जगत् रूपी अश्वत्थ को नीचे से नहीं ऊपर से काटो, त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बन्धन को काटो, जगत जगत वृक्ष नहीं रहेगा, तब केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रहेगा। शेष तीन अध्यायों में तीन गुणों के तीन स्तरों का वर्णन है, क्योंकि उस स्तर की पहचान करके ही उससे पार पाया जा सकता है, वृक्ष की जड़ जान कर ही उसे काटा जा सकता है और वृक्ष की सम्पूर्णता को जाना जा सकता है। इन तीन अध्यायों में विभिन्न स्तरों के ज्ञान, दान, तप, श्रद्धा, बुद्धि, धैर्य और सुख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की परिभाषाएँ दी गयी हैं, इसलिए नहीं कि मूल्यों का तारतम्य, ऊँच-नीच दिखाया जाय, प्रत्युन ठीक इसके उलटे इसका उद्देश्य यह है कि इन स्तर भेदों को एक ही विराट् व्यापार का अंग समझने की अभेद बुद्धि, अतिक्रामी अभेद की बुद्धि विकसित हो, भेदों की सतही वास्तविकता की प्रतीति के साथ-साथ अभेद की सही वास्तविकता की प्रतीति हो। भूत के रूप में, अतीत के रूप में या सिद्ध रूप में वस्तु को देखते हैं, उसके सादि और सान्त रूप में किसी वस्तु को देखते हैं, उसके इतिहासबद्ध रूप में किसी वस्तु को देखते हैं, किसी समाज को देखते हैं, तो वह भिन्न है, अनेक है, और उसका भिन्न होना, अनेक होना, विलग होना स्वाभाविक है। पर जब हम वस्तु को भाव रूप में सतत होने की प्रक्रिया में वर्तमान रूप में देखते हैं, उसके सनातन प्रवाही रूप में देखते हैं तो उसकी तथता, उसकी वास्तविकता को देखते हैं, उसके न चुकने वाले सनातन स्वरूप को देखते हैं। वही देखना दीखना है, **'सर्वभूतेषु येनेकं भावमव्ययमीक्षते।'** इसलिए श्रीकृष्ण का अन्तिम उपदेश है कि भूतों को छोड़ो, वर्तमान को सतत वर्तमान रूप मुझे देखो, मेरी शरण में आओ। तुम एक विराट् सत्य के लिए लड़ो, तुम्हारे कर्म का दायित्व मेरा होगा, जिससे लड़ रहे हो, उसे अपना वैरी न मानो, जिसके साथ कन्धा मिलाकर लड़ रहे हो उसे अपना प्रिय न मानो, जीवन के परम सत्य की तुम अनासक्त युद्ध द्वारा प्राप्त करो। एक बड़े ताने-बाने में सचेत और सक्रिय रूप में रंग बनो, पर इस भाव से कि यह रंग तुम न रहे, यह हम हो जाय। सत्रहवें अध्याय में अर्जुन ने पूछा कि शास्त्र-विधि छोड़कर जो श्रद्धा करे उसकी क्या गति है क्योंकि उसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा था कि **ॐ तत्सत्** यह ब्रह्म का निर्देश है, जो अश्रद्धापूर्वक यज्ञ किया जाय, दान दिया जाय, तप किया जाय वह शास्त्र-भावन व्यापार है और भावन विहित होता हुआ भी असत् हैं। श्रद्धा का महत्त्व इसलिए है कि वही पुरुष का व्यापार ही पुरुष है। श्रीमद्भगवद्गीता का मूल उपदेश है तुम होना सीखो, धीरे-धीरे सब कुछ होना सीखो, सब कुछ होने का अन्तिम उपाय है, छोटे धर्मों का त्याग, बड़े धर्म का एकान्तिक वरण। वह बड़ा धर्म और कुछ नहीं, अव्यय भाव है, अच्युत भाव है, वही श्रीकृष्णभाव है, क्योंकि श्रीकृष्ण इतने व्ययशील समाज में अकेले अव्यय हैं, क्योंकि वह जड़ ब्रह्म नहीं हैं, वह ब्रह्मार्पण हैं, घोर आंगिरस से दीक्षा प्राप्त प्राणसंशित जागरूक लोकानुग्रह के आचरण हैं। वह किसी के सगे नहीं और सब के हैं, सब में हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह अव्ययभाव महाभारत में बिखरे हुए अनेक आख्यानों में मिलता है, महाभारतकार उन्हें **इतिहास** कहते हैं, इन सभी छोटे-छोटे इतिहासों में भाव-प्रक्रियाओं में दो बातें समान रूप से मिलती हैं, कोई दुविधा में पड़ कर प्रश्न करता है—कौन श्रेष्ठतर धर्म है? और एक व्यक्ति जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तर्द्वन्द्व से गुजर चुका है, उत्तर देता है, वह कभी ऋषि है, कभी देवता है, कभी मांस विक्रेता धर्म व्याध है, कभी पक्षी है, कभी सर्प है, कभी पशु है; वह कुछ भी हो, उसे स्मरण है कि वह जो कुछ हुआ है उसमें बड़े धर्म की प्रतिस्मृति कारण है, वह उसी की पूर्ति के लिए ऐसा हुआ है। महाभारत में कोई भी छोटा-बड़ा पात्र नहीं है जिसका भावान्तर न हुआ हो, कोई गन्धर्वराज से धृतराष्ट्र होता है, कोई वसु से भीष्म, कोई वृहस्पति से द्रोण, कोई कलि से दुर्योधन, धर्म से युधिष्ठिर या कोई ऋषि के शाप से धर्म से शूद्रा में उत्पन्न विदुर, कोई ऋषि के शाप से महासर्प, सब को भाव की पूर्ति करनी है। स्वयं परम भाव रूप श्रीकृष्ण को पूर्ति करनी पड़ती है, गान्धारी के शाप की, दुर्वासा के शाप की। मदान्ध यादव जाति में जन्म लेने के कारण उनके विनाश की साझेदारी की। शान्ति पर्व के विभिन्न उपपर्वों में ऐसे अनेक इतिहास पिरोये हुए हैं। आश्वमेधिक पर्व में ऐसे कई इतिहास अनुगीता के रूप में संग्रहीत हैं। अनुगीता का अर्थ ही है—गीता का अनुसरण करने वाली गीता। महाभारत में श्रीमद्भगवद्गीता संहृत और समग्र है, दूसरे प्रसंग उसी के एक-एक अंश को अलग-अलग उद्भासित करते हैं। अनुगीता में ब्रह्मार्पण या अपने व्ययशील संसार को अव्यय में रूपान्तर करने के भाव को कई रूपकों, मिथकों, कथानकों से स्पष्ट किया गया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। ब्राह्मण-ब्राह्मणी संवाद में यह आता है कि दस इन्द्रियाँ होती हैं। उनके विषय ही दश हवि हैं, समिधाएँ हैं, दश अग्नियों का हवन होता है, चित्त ही स्रुवा है, पवित्र ज्ञान ही वित्त है, यज्ञ का फल है जीवन रूप आतमा। गार्हपत्य अग्नि है, वहाँ से आग लेकर मन रूपी आह्वनीय अग्नि में आग धधकायी जाती है, उसी में आहुति पड़ती है मन्त्र के द्वारा; मन और वाक् का, अग्नि और सोम का मिथुनी भवन होता है अर्थात् मन और वाक् के इस संयोग से विश्वसख्य का संयोजन होता है।

दशेन्द्रियाणि होतॄणि हवीषि दश भाविनि।
विषया नाम समिधां हूयन्ते च दशाग्निषु॥
चित्तं स्रुवश्न वित्तं च पवित्रं ज्ञानमुत्तमम्।
सुविभक्तमिदं सर्वं जगदासीदिति श्रुतम्॥

(आश्वमेधिक पर्व २१।५-६)

तथा——

शरीरभृद् गार्हपत्यस्तस्मादन्यः प्रणीयते।
मनश्चाहवननीयस्तु तस्मिनाक्षिप्यते हविः॥
ततो वाचस्पतिर्जज्ञे तं मनः पर्यवेक्षते।
रूपं भवति वैवर्णं समनुद्रवतेमनः॥

(तदैव ८-९)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन के ताप से वाक् आकृष्ट होती है, सब को संयोजित करने वाली वाक् आकृष्ट होती है और वाक् के संयोग से मन अभितप्त होकर विम्रत होता है, वह वर्णात्मक वैखरीवर्णात्मक आकार ग्रहण करता है, वह दूसरे के लिए निवेदनीय बनता है। यही सृष्टि की साभिप्रायता है।

महाभारत के रचना-कार ने महाभारत की रचना कथा के लिए नहीं की, उस पवित्र ज्ञान के यज्ञ के निरन्तर अभ्यास के लिए की जिसे पा कर हजार माताएँ गर्भ धारण करती हैं। हजार पिता पोषण करते हैं, हजार वार विवाह होता है, पुत्र उत्पन्न होते हैं। ये अनुभव के विषय बन चुके हैं, बन रहे हैं, बनेंगे, हजारों हर्ष के स्थान मिले, मिलते हैं, मिलेंगे, हजारों शोक के स्थान भी, ये सभी आविष्ट नहीं करेंगे क्योंकि तब इनमें निजता का अभ्यास नष्ट हो जाएगा।

मातापितृसहस्राणि पुत्रदाश्शतानि च ।
संसारेस्वनुभूतानि यान्ति यास्यान्ति चापरे ॥
हर्षस्थानसहस्राणि शोकस्थानशतानि च ।
दिवसे-दिवसे मूढभाविशान्ति न पंडितम् ॥

(स्वर्गारोहण प० ५।५९-६०)

ऐसे ज्ञान यज्ञ की संकल्पना करने वाले व्यासदेव के विशेषण मननीय हैं, वे सत्यवादी मुनि हैं, सत्यवती सुत हैं, सर्वज्ञ हैं, विधिज्ञ हैं, धर्मज्ञ हैं, सद्रूप हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, अतीन्द्रिय हैं, शुचि तप से भावितात्मा हैं, ईश्वर हैं, सांख्यायोगवान् हैं, एकांगी दृष्टि से नहीं दिव्य चक्षु से देख कर उन्होंने पुण्य इतिहास रचा।

(आश्व० प० ५।३६-३८)

महाभारत के सत्य का प्रवाह यह अव्यय भाव है जो एक ओर कगार तोड़ता है बहुत से अहंकारों के, ममकारों के, बहुत निर्ममता के साथ, दूसरी ओर आच्युत होकर सूखे, बंजर और उपेक्षित क्षेत्रों को रस से अनुभव कराता है कि तुम्हीं में क्षेत्रज्ञ है। स्पष्ट शब्दों में कहें, सत्य का एक पक्ष है कठोर, मुच्छेदक, विध्वंसक, तापक, बेधक और खण्डक; दूसरा पक्ष है करुण, अनृशंस, संयोजक, अभिद्रावक, सूत्रात्मा और परिपूरक। एक पक्ष छल का छल है, दूसरा पक्ष करुण की करुणा, कृपा की कृपा। महाभारतकार इन दोनों पक्षों के बीच में कभी भी आँख-मिचौनी का खेल रचते हैं और तभी कभी कठोरता ही सही जान पड़ती है, कभी करुणा ही, पर सही दोनों मिल कर हैं। वह दुराव के अनेक स्थानों का पता लगाते हैं और उन्हें ममत्व भी देते हैं, पर उन्हें उघारते समय वह बहुत ही अकरुण हो जाते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, क्योंकि उघारना ही करुणा है। वे देवताओं और असुरों को उतारते हैं, पर उठाते हैं मनुष्य को, जो अपने भीतर इन दोनों की सत्ता पहचान कर इनसे ऊपर उठता है। नरोत्तम के पास पहुँचने के लिए अनुशासन पर्व में श्री के निवास के स्थल श्री के मुख से कहलाये गये हैं। वहीं पर श्री जिन स्थानों को छोड़ देती है, उनका भी उल्लेख है। श्री धरित्री हैं, नारायण के साथ एकचित्त हैं, श्री और कुछ नहीं पार्थिव अस्तित्व की चरम सार्थकता हैं, वे जिन स्थानों का परित्याग करती हैं, वे सभी स्थान अल्पता वाले हैं, अल्पता तेज में, बल में हो या तृप्ति में हो, वे सभी स्थान अल्पता या क्षुद्रता के ही कारण क्लेश और कोप से आक्रान्त है, उन सभी स्थानों में मूढ़ता आक्रान्त किये हुए है । और जहाँ श्री रहती है वहाँ पूर्णता है, परस्पर पूरकता है, सरोवर हैं तो फूलों से फूले हुए, शारदीय रात्रियाँ हैं तो नक्षत्रों से खची हुई, नदियाँ हैं तो पक्षियों के कलरव को अपने कलरव से जोड़े हुए, किनारे की वनराजियों से अनुच्छादित, किनारे तपस्या के वातावरण से पवित्रित पानी से भरपूर, परस्पर वैर भाव त्याग करके तृप्ति के लिए आने वाले प्राणियों से भरपूर—

वसामि फुल्लासु च पद्मिनीषु
नक्षत्रवीथीषु च शारदीषु ।
गजेषु गोष्ठेषु तथासनेषु
सरः सु फुल्लोत्पलपंकजेषु ॥
नदीषु हंसस्वननादितासु
क्रौंचावपुष्टस्वर शोभितासु ॥
विकीर्णकूलद्रुमराजितासु
तपस्विसिद्धिद्विजसेवितासु ॥
वसामि नित्यं सुबहूदकासु
सिंहैगजेश्चाकुलितादवासु ।

(अनुशासन पर्व ११-१५-१७)

महाभारत इस श्री का सनातन निवास है। इसीलिए इसमें नारायण अपने आप आकृष्ट हो कर आदि से अन्त तक अभिव्याप्त हैं। कहीं विधि रूप में, कहीं निषेध रूप में, कहीं ज्ञान रूप में, कहीं अज्ञान रूप में। पर वह जब नहीं हैं, तब उनकी अनुपस्थिति सब कुछ अन्धकारमय कर देती है, जब हैं तो सब प्रकाशमय कर देती है, पर होने के कारण मनुष्य की नर की दीर्घ यात्रा, वनवास, पर्वतारोहण, दारुण अपमान, छोटे विजय से उत्पन्न छोटे अहंकार, इन तमाम स्थितियों से गुजरने की प्रक्रिया भी है, अनन्त जल में महाव्याल की शय्या पर सोये नारायण का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगना ऐसे नहीं होता है, क्षीर समुद्र में पादाक्रान्त पृथ्वी की पुकार लहर बन कर आती है, आग धधकती है, यकायक एक कमल फूट पड़ता है और उसमें से स्रष्टा निकल कर नारायण का आह्वान करने लगते हैं, सृष्टि के धारक उठो, सृष्टि उद्वेलित है, कमल और कमल के साथ-साथ कमला धारित्री उद्वेलित है।

महाभारत के नारायण काव्य में स्रष्टा हैं कृष्ण द्वैपायन, कमल हैं सत्य, कमला हैं करुणा, अशेष अस्तित्व के प्रति करुणा, स्रष्टा के उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हैं नर के साथी नरोत्तम की जय-यात्रा, कठिन जय-यात्रा, सर्वस्वापहारी जय-यात्रा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट-१

महाभारत काव्य-चयन

१. प्रश्नों के उत्तर

यक्ष-युधिष्ठिर संवाद (आरण्यक पर्व २९७)

किं स्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः ।
कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्च प्रतिष्ठिति ॥ २६ ॥

यक्ष ने पूछा—"कौन है जो सूर्य को ऊँचे चढ़ाता है, कौन है जो उसके चारों ओर चलते हैं, कौन है जो उसे अस्ताचल की ओर ले जाता है, कौन है जिसमें प्रतिष्ठित है ?"

ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चराः ।
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति ॥२७॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"ब्रह्म सूर्य को ऊँचे चढ़ाता है, देवता उसे चारों ओर से घेर कर चलते हैं । धर्म (ऋत) उसे अस्त की ओर ले जाता है और सत्य सूर्य को प्रतिष्ठित करता है ।"

किमेकं यज्ञियं साम किमेकं यज्ञियं यजुः ।
का चैका वृश्चेत् यज्ञं कां यज्ञो नातिवर्तते ॥३४॥

यक्ष ने पूछा—"वह कौन-सा साम है, जो सर्वश्रेष्ठ यज्ञ का साधन है, वह कौन-सा मंत्र है जो अद्वितीय यज्ञ का साधन है, वह कौन है जो अकेली यज्ञ पर छायी रहती है, वह कौन है जिसका यज्ञ अतिक्रमण नहीं कर सकता ?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणो वै यज्ञियं साम मनो वै यज्ञियं यजुः ।
वागेका वृश्चेत् यज्ञं तां यज्ञो नातिवर्तते ॥३५॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"प्राण ही यज्ञ का अद्वितीय साधन है, मन ही अद्वितीय मन्त्र है, वाणी ही यज्ञ की अद्वितीय छत्र है, वाणी ही यज्ञ की मर्यादा।"

किंस्विदापततां श्रेष्ठं किं स्विन्निपततां वरम् ।
किंस्वित्प्रतिष्ठमानानां किं स्वित्प्रवदतां वरम् ॥३६॥

यक्ष ने पूछा—"ऊपर से नीचे से गिरने वालों में कौन श्रेष्ठ है, यज्ञ के अन्दर डाली जाने वाली वस्तुओं में कौन श्रेष्ठ है, प्रतिष्ठितों में कौन श्रेष्ठ है और किसकी बोली उत्तम है ?"

वर्षपमाततां श्रेष्ठं बीजं निपततां वरम् ।
गावः प्रतिष्ठमानानां पुत्रः प्रवदतां वरः ॥३६॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"जल की वृष्टि श्रेष्ठ है ऊपर से नीचे गिरने वालों में, बीज श्रेष्ठ है पृथ्वी में डाली जाने वाली वस्तुओं में, गौ श्रेष्ठ है वस्तुओं में, और बोली उत्तम है पुत्र की।"

इन्द्रियार्थाननुभवन्बुद्धिमांल्लोकपूजितः ।
संमतः सर्वभूतानिमुछ्वसन्को न जीवति ॥३८॥

यक्ष ने पूछा—"वह कौन है जो समस्त इन्द्रियों से विषयों का उपभोग कर सकता है, बुद्धिमान है, पूज्य है, समस्त प्राणियों में प्रतिष्ठित है, जो साँस लेते हुए भी जीता नहीं है ?"

देवतातिथभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पञ्चानामुछ्वसन्न स जीवति ॥३९॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"जो व्यक्ति देवता, अतिथि, भृत्य, पिता और अपनी आत्मा—इन पाँचों को यथायोग्य तृप्ति नहीं देता, वह केवल साँस लेता है, वह जीता नहीं।"

किंस्विद् गुरुतरं भूमेः किं स्विदुच्चतरं च खात् ।
किंस्विच्छीघ्रतरं वायोः किं स्विद् बहुतरं नृणाम् ॥४०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यक्ष ने पूछा—"पृथ्वी से भी अधिक गुरु कौन है, आकाश से भी अधिक ऊँचा कौन है, वायु से भी अधिक शीघ्रगामी कौन है, मनुष्यों के लिए कौन ऐसी वस्तु है जो सबसे अधिक शीघ्रता से बढ़ती जाती है ?"

माता गुरुतरा भूमेः पिता उच्चतरश्च खात् ।
मनः शीघ्रतरं वायोश्चिन्ता बहुतरी नृणाम् ॥४१॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"माँ पृथ्वी से गुरुतर है, पिता आकाश से ऊँचे हैं, मन वायु से अधिक द्रुतगामी है, और चिन्ता सबसे अधिक तेजी से बढ़ती है।"

किं स्विदेको विचरति जातः को जायते पुनः ।
किं स्विद्धिमस्य भैषज्यं किं स्विदावपनं महत् ॥४६॥

यक्ष ने पूछा—"कौन अकेले विचरण करता है, कौन उत्पन्न हो कर पुनः उत्पन्न होता है, शीत की औषधि क्या है और सबसे अधिक बड़ा बीज धारण का क्षेत्र कौन-सा है ?"

सूर्य एको विचरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भैषज्यं भूमिरावपनं महत् ॥४७॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"अकेला घूमने वाला सूर्य है, उत्पन्न होकर पुनः उत्पन्न होने वाला चन्द्रमा है, अग्नि शीत की औषधि है, पृथ्वी सबसे बड़ा बीज धारण का क्षेत्र है ।"

किं स्विदेकपदं धर्म्यं किं स्विदेकपदं यशः ।
किं स्विदेकपदं स्वर्ग्यं किं स्विददेकपदं सुखम् ॥४८॥

"धर्म का उत्तम स्थान कौन-सा है, यज्ञ का उत्तम स्थान कौन-सा है, स्वर्ग का उत्तम उपाय कौन-सा है और वह कौन-सा सुख है जो अद्वितीय है ?"

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः ।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम् ॥४९॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"कुशलता ही धर्म का उत्तम स्थान है, दान ही यश का उत्तम स्थान है, सत्य से बड़ा स्वर्ग का कोई साधन नहीं और शील से बड़ा कोई सुख नहीं ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किं स्विदात्मा मनुष्यस्य किं स्विद्दैवकृतः सखा।
उपजीवनं किं स्विदस्य किं स्विदस्य परायणम् ॥५०॥

यक्ष ने पूछा--"मनुष्य की आत्मा क्या है, देवता का दिया हुआ मित्र कौन है, मनुष्य के जीवन का आलम्बन कौन है, और उसके जीवन का सबसे अच्छा आचरण कौन है ?"

पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा।
उपजीवनं च पर्जन्यो दानमस्य परायणम् ॥५१॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"पुत्र ही मनुष्य की आत्मा है, पत्नी ही देवताओं की दी सखी, मेघ ही जीवन का आलम्बन और दान ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ आचार है।"

कश्च धर्मः परो लोके कश्च धर्मः सदाफलः।
किं नियम्ये न शोचन्ति कैश्च सन्धिर्न जीर्यते ॥५४॥

यक्ष ने पूछा—"कौन धर्म है जो सबसे श्रेष्ठ है, कौन धर्म है जो सदा फलता रहता है, कौन है जिसको नियन्त्रण करने से शोक नहीं होता और कौन है जिनसे कभी जुड़ाव टूटता नहीं ?"

आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रीधर्मः सदाफलः।
मनो यम्य न शोचन्ति सद्भिः सन्धिर्न जीर्यते ॥५५॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"आनृशंस ही सबसे बड़ा धर्म है, तीनों पुरुषार्थों का पालन ही सदा फल देने वाला धर्म है, मन का नियंत्रण करने पर शोक का अवसर नहीं आता और सज्जनों का जुड़ाव कभी नहीं टूटता।"

किं नु हित्वा प्रियो भवति किं हित्वा न शोचति।
किनु हित्वार्थवान् भवति क्निनुहित्वा सुखी भवेत् ॥५६॥

यक्ष ने पूछा—"किसे त्याग कर मनुष्य लोगों का प्रिय होता है, किसे त्याग कर उसे पछतावा नहीं होता, किसे त्याग कर मनुष्य अर्थवान् होता है, किसे त्याग कर मनुष्य सुखी होता है ?"

मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचते।
कामं हित्वार्थवान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत् ॥५६॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"अभिमान त्याग कर ही सबको प्रिय होता है। क्रोध त्याग कर पछतावा नहीं होता, काम त्याग कर अर्थवान् होता है, लोभ त्याग कर सुखी होता है।"

मृतः कथं स्यात्पुरुषः कथ राष्ट्रं मृतं भवेत्।
श्राद्धं मृतं कथं च स्यात् कथं यज्ञो मृतो भवेत् ॥५८॥

यक्ष ने पूछा—"मनुष्य कैसे मृत होता है, राष्ट्र कैसे मृत होता है, श्राद्ध कैसे मृत होता है और यज्ञ कैसे मृत होता है?"

मृतो दरिद्रः पुरुषोमृतं राष्ट्रमराजकं ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्तवदक्षिणः ॥५९॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"दरिद्र हो जाय तो मनुष्य मृत होता है, राज्य व्यवस्था-हीन हो जाय तो राष्ट्र मृत हो जाता है, श्रोत्रिय-विहीन हो जाय तो श्राद्ध मृत होता है, दक्षिणाहीन हो जाये तो यज्ञ मृत हो जाता है।"

व्याख्याता मे त्वया प्रश्ना यथातथ्य परन्तप।
पुरुषं स्विदानीमाख्याहि यश्च सर्वधनी नरः ॥६२॥

यक्ष ने कहा—"हे शत्रुजेता ? तुमने मेरे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिया, तुम पुरुष की परिभाषा बताओ और सब प्रकार से सम्पन्न मनुष्य का लक्षण बताओ।"

दिवं स्पृशति भूमिं च शब्दः पुण्यस्य कर्मणः।
यावत्स शब्दो भवति तावत्स्वपुरुष उच्येत ॥६३॥
तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च।
अतीतानागते चोभे सवै सर्वधनी नरः ॥६४॥

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"पुरुष उसी अनुपात में पुरुष है जिस अनुपात में उसके पुण्य कर्मों का यश आकाश को छूता है, समस्त पृथ्वी को छूता है और जब तक उसके यश का गान रहता है, तभी तक वह पुरुष रहता है।

सबसे अधिक सम्पन्न वह है, जिसके सुख और दुःख, भूत और भविष्यत् समान हों, जिसकी बुद्धि निश्चल हो।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. सनातन-गान

उद्योग पर्व (अध्याय ४५) :
सनत्सुजात द्वारा धृतराष्ट्र को सनातन ब्रह्म का उपदेश

श्लोक १

यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः ।
तद्वै देवा उपासन्ते यस्मादर्को विराजते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

सनत् सुजात बोले—जिसके प्रकाश से महान प्रकाश वाला सूर्य प्रकाशित होता है, वह शुद्ध ब्रह्म ज्योतिर्मय है, कीर्तिमान है, विशाल है। सब देवता उसी की उपासना करते हैं। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक २

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्धते ।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

उस शुद्ध ज्योति से हिरण्यगर्भ प्रजापति पैदा होते हैं, उसी से बढ़ते हैं। वह ज्योतिर्मय ब्रह्म समस्त ज्योतियों को उजागर करता है और स्वयं अनतपा रह-कर उन्हें तपाता है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ३

आपोऽथ अभ्यः सलिलस्य मध्ये उभौ देवौ शिश्रियातेन्तरिक्षे।
स सध्रीचीः स विषूजीर्वसप्ता उभे बिभर्ति पृथ्वीं दिवं च ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

जल की भाँति एक रस रहकर वह परब्रह्म जल के भीतर ईश्वर और जीव-दू दोनों को धारण करता है। वही सबका आश्रय है। वही पृथ्वी और आकाश को धारण करता है। वही सबसे सम्मिलित है और सबसे दूर है। उसी सना-तन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ४

उभौ च देवी पृथिवीं दिवं च दिशश्च शुक्रं भुवनं विभर्ति ।
तस्माद्दिशः सरितश्च स्रवन्ति तस्मात्समुद्रा विहिता महान्तः।
योगिनस्त प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वही ज्योति ईश्वर और जीव को, पृथ्वी और आकाश को, समस्त दिशाओं को धारण करती है। उसी से समस्त दिशायें, समस्त नदियाँ, उसी से बड़े-बड़े सागर प्रकट हुए हैं। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ५

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तं ध्रुवस्याव्ययकर्मणः।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

उस नित्य को न झुकने वाले भाव के अधिष्ठाता को शरीर-रूप-रथ के चक्र में स्थित सत्य को मन में जुते हुए इन्द्रिय रूपी घोड़े हृदयाकाश में खींचते हुए अजर लोक तक ले जाते हैं। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ६

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम्।
मनीषयाथो मनसा हृदाच य एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

उस ज्योति के सदृश कोई दूसरा रूप नहीं है। कोई उसे आँखों से नहीं देख सकता। उसे अपने मन से, मनीषा से जान सकता है। जो उसे जान लेता है, अमर हो जाता है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ७

द्वादशपूगां सरितं देवरक्षिताम्।
मधुशन्तस्तदा संचरन्ति घोरम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

वह इस संसार-रूपी नदी का मधुर जल है जिसमें दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि नावों के बेड़े की तरह तिर रहे हैं, जो देवताओं के द्वारा रक्षित है। पर उसमें डूबने वाले ही उस मधुर रस का आस्वादन कर सकते हैं। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ८

तदर्धमासं पिबति संचित्य भ्रमरो मधु।
ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे मधुमक्खी पन्द्रह दिन मधु का संग्रह करती है, पन्द्रह दिन उसका आस्वाद लेती है, उसी तरह यह संसारी जीव इस जन्म के कर्मों का फल दूसरे जन्म में पाता है। वह सनातन इसी कर्मफल की व्यवस्था में रहता है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ९

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपत्य अपक्षकाः।
ते तत्र पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथादिशम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

सुनहले विषयों पर ललचाकर जो पंखहीन जीव उसकी आशा में दिशा-दिशा में उड़ते रहते हैं, उस तृष्णा में वह सनातन बसता है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक १०

पूर्णात्पूर्णान्युद्धरन्ति पूर्णात्पूर्णानि चक्रिरे।
हरन्ति पूर्णात्पूर्णानि पूर्णमिवावशिष्यते।
योगिनस्तं, प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

पूर्ण से पूर्ण स्फुरित होता है। पूर्ण से पूर्ण निकालने चलते हैं तो पूर्ण ही बच रहता है। वह पूर्ण ही सनातन है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक ११-१२

तस्माद्वै वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रयतः सदा।
तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आततः॥
सर्वमेव ततो विद्यात्तत्तद्वक्तुं न शक्नुमः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

उसी पूर्ण ब्रह्म से वायु आयु आविर्भूत हुआ और उसी के कारण वह बहता रहता है। उसी से अग्नि, उसी से सोम आविर्भूत हुआ। उसी में प्राण भरता रहता है। कहां तक गिनाएँ? सभी वस्तुएँ उसी सनातन से परिपूर्ण हैं। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लोक १३

अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः।
आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

अपान प्राण में निगीर्ण होता है। प्राण चन्द्रमा में, चन्द्रमा आदित्य में और आदित्य उस परम सनातन में। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक १४

एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
तं चेत्सततमृत्विजं न मृत्युर्नामृतं भवेत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

इस संसार रूपी जल में हंस की तरह वह सनातन एक पर पानी में रखता है, एक पैर ऊपर उठाये रहता है। यदि उसे उठा ले तो न मृत्यु रह जाये, न मोक्ष रह जाये। वह सनातन अमृत और मृत्यु का सन्तुलन है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक १६

सदा सदा सत्कृतः स्यान्न मृत्युमृतं कुतः।
सत्यानृते सत्यसमानबन्धने सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

वह सनातन सत् से असत् से दोनों से सत्कृत है। न वह मृत्यु है, न वह अमृत है। वह नित्य-नित्य है। सत्य और असत्य सब कुछ उस सनातन में समान रूप से बँधे हुए स्थित हैं। वही सत् की भी योनि है, वही असत् की भी योनि है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

श्लोक २०

न साधुना नोत असाधुना वा समानमेतद्दृश्यते मानुषेषु।
समानमेतदमृतस्य विद्यादेवं युक्ते मधुतद्वै परीप्सेत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥

न उसका सम्बन्ध पुण्य से है, न पाप से। यह विषमता केवल मनुष्य में होती है। यह जानकर उसके सारे रूप मधु का आस्वादन करना चाहता है, वही अमृत होता है। उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लोक २१

नास्यातिवादा हृदयं तापयन्ति नानधीतं नाहुतमग्निहोत्रम् ।
मनो ब्राह्मी लघुमादधीत प्रज्ञानमस्य नाम धीरा लभन्ते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥

ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हृदय को कोई भी निन्दा अनुतप्त नहीं करती । न उसके मन में यह होता है कि मैंने स्वाध्याय नहीं किया, मैंने अग्निहोत्र नहीं किया । उसके मन में कोई भी छुटपन का भाव नहीं होता । उसे सनातन ब्रह्म का स्पर्श स्थिर ज्ञान देता है । उसी सनातन का दर्शन योगी को मिलता है ।

३. ललकार

उद्योग पर्व (अध्याय ३) :

श्लोक ५

न मया त्वं न पित्रासि जातः क्वाभ्यागतो ह्यसि ।
निर्मन्युरप्रशाखीयः पुरुषः क्लीवसाधनः ॥

तुम मेरी कोख से पैदा नहीं हो । तेरे पिता ने भी तुझे उत्पन्न नहीं किया । तेरे जैसा कायर, अमर्षहीन, क्षत्रियों की शाखा के अयोग्य नाम मात्र का पुरुष कहाँ से पैदा हुआ जो हर प्रकार से नपुंसक है ।

श्लोक ६

यावज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह ।
मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभरः ।
मनः कृत्वा सुकल्याणं मा भैस्त्वं प्रतिसंस्तभ ॥

तुमने सदा के लिए जीवन भर के लिए आशा छोड़ दी ? उठो । कल्याण के लिए युद्ध की धुरी कन्धों पर उठा लो । अपने को दुर्बल मत मानो । अल्प से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संतुष्ट मत होओ। मन को शिवसंकल्प से जोड़ो। भय छोड़ो और प्रतिकार के लिए डट कर खड़े हो जाओ।

श्लोक ७

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान्नन्दयन्सर्वान्निर्मानो बन्धुशोकदः ॥

हे कापुरुष ! उठो ! पराजित होकर ऐसे पड़े न रहो। ऐसे पड़े रह कर सभी शत्रुओं को तुम सुख पहुँचाओगे और सम्मान खोकर अपने बन्धुओं को शोक पहुँचाओगे।

श्लोक ८

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।
सुसंतोषः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥

छोटी नदी होती है, जल्दी भर जाती है। चूहे की अंजलि थोड़े दानों से भर जाती ही है। कायर थोडे से तृप्त हो जाता है।

श्लोक ९-१०

अप्यरेरारजन्दंष्ट्रामाश्वेव निधनं व्रज ।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रम ॥
अप्यरेः श्येनवच्छिद्रं पश्येस्त्वं विपरिक्रमन् ।
विनदन्वाथ वा तूष्णीं व्योम्नि वा परिशङ्कितः ॥

शत्रु रूपी साँप के दाँत तोड़ते हुए तुम, अच्छा हो कि, मृत्यु को प्राप्त होओ। मृत्यु सिर पर खड़ी हो तब भी पराक्रम से पीछे न हटो। बाज की तरह तुम उड़ान भरते रहो और शत्रु की दुर्बलता का क्षेत्र देखते ही आवाज करते हुए या चुप रहकर झपट्टा मारो।

श्लोक ११-१२

त्वमेवं प्रेतवच्छेषे कस्माद् वज्रहतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वेवं पराजितः।
मास्तं गमस्त्वं कृपणो विश्रूयस्व स्वकर्मणा।
मा मध्ये मा जघन्ये त्वं माधो भूस्तिष्ठ चोर्जितः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे वज्र तुम पर गिर पड़ा हो ऐसे मुर्दा की तरह क्यों पड़े हो ? हे कापुरुष, उठो ! हार कर ऐसे पड़े न रहो, दयनीय बनकर अस्त न हो जाओ । अपने शौर्य से ख्याति प्राप्त करो । न मध्यम मार्ग अपनाओ, न निकृष्ट (अधम) मार्ग । उत्तम होने के लिए युद्ध में अपनी ऊर्जस्विता दिखलाओ ।

श्लोक १३-१४

अलातं तिन्दुकस्येव मुहुर्तमपि विज्वल ।
मा तुषाग्निरिवानर्चिः काकरङ्काजिजीविषुटः ।
मुहुर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।।
माहस्म कस्यचिद्गेहे जनी राज्ञः खरी मृदुः ।
कृत्वा मानुष्यकं कर्म सृत्वाजिं यावदुत्तमम् ।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोति न चात्मानं विगर्हते ।।

तेंदु की चिनगारी की तरह दो घड़ी के लिए भी प्रज्वलित हो उठो । चिटक उठो । भुस की आग की तरह ज्वालारहित केवल काला धुआँ न करो । भभक कर एक क्षण जलना देर तक सुलगने से कहीं अधिक श्रेयस्कर है । किसी भी राजा के घर कोमल स्वभाव का पुरुष जन्म न ले । मनुष्योचित कर्म करके युद्ध में पराक्रम दिखलाकर ही राजकुमार अपने धर्म से ॠण होता है और अपने को निन्द्य नहीं बनाता ।

श्लोक १५

अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचन्ति पण्डिताः ।
आनन्तर्यं चारभते न प्राणानां धनायते ।।

समझदार आदमी अभीष्ट फल पाये या न पाये, इसकी चिन्ता नहीं करता । वह केवल निरन्तर प्राणपर्यन्त प्रयत्न करता रहता है और प्राणों का विनिमय धन से नहीं करता ।

श्लोक २०

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम् ।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।।

जिस व्यक्ति को महान् और अद्भुत पुरुषार्थ तथा पराक्रमशील चरित्र को लोग चर्चा का विषय नहीं बनाते, वह जनसंख्या की राशि बढ़ाने वाला है । न वह स्त्री है, न पुरुष ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लोक २१

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलोभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥

जिस पुत्र को दान से, तप से, शौर्य से, विद्या से, अर्थ से, यश नहीं मिला, वह अपनी माँ का निकृष्ट विसर्ग मात्र है, सन्तान नहीं ।

श्लोक २३

न त्वेव जाल्मीं कापालीं वृत्तिमेषितुमर्हसि ।
नृशंस्यामयशस्यां च दुःखां कापुरुषोचिताम् ॥

तुम्हारे लिए यह उचित नहीं है कि इस पाखण्ड पूर्ण भिखमंगी वृत्ति का अनुसरण करो । यह वृत्ति निन्दनीय है, उचित नहीं है, दुख देने वाली है और कायर पुरुषों की कायरता की सूचक है ।

श्लोक २८

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीर्यमरिनन्दनम् ।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥

तुम्हारे जैसे क्रोधहीन, उत्साहहीन, वीर्यहीन, शत्रुओं के लिए सुविधाजनक कुपुत्र को कोई सुहागिन स्त्री उत्पन्न न करे ।

श्लोक २९

मा धूमाय ज्वलात्यन्तमाक्रम्य जहि शात्रवान् ।
ज्वल मूर्धन्यमित्राणां मुहूर्तमपि वा क्षणम् ॥

धुआँ पैदा करने के लिए तुम देर तक न जलो । शत्रुओं पर टूट पड़ो । भले ही शत्रुओं के सिर पर एक क्षण के लिए भभको, पर अपना तेज दिखलाओ ।

श्लोक ३०

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी ।
क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ॥

पुरुष का पुरुषत्व इसी में है कि उसे अमर्ष हो सकता है, वह सहन नहीं कर सकता है । जो चुपचाप सह ले, वह अमर्षहीन न स्त्री है, न पुरुष ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लोक ३९

अनु त्वां तातं जीवन्तु ब्राह्मणाः सुहृदस्तथ ।
पर्जन्यमिव भूतानि देवा इव शतक्रतुम् ।।

हे पुत्र ! तुम उद्योग करो । जैसे समस्त प्राणी वर्षा करने वाले मेघ या इन्द्र का मुँह जोहते हैं, वैसे ही ब्राह्मण और तुम्हारे मित्र तुम्हारे बल पर जियें।

श्लोक ४०

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि सञ्जय ।
पक्वं द्रुममिवासाध तस्य जीवितमर्थवत् ।।

हे संजय ! जैसे पके फलों वाले पेड़ से समस्त प्राणी आसरा लगाये रखते हैं, वैसे ही जिस पुरुष के ऊपर समस्त प्राणी अवलम्बित रहते हैं उसी का जीवन अर्थवान् है ।

४. मृत्यु को पहचानो

'स्त्री पर्व', अध्याय २ :
विदुर का उपदेश

श्लोक २

उत्तिष्ठ राजन्कि शेषे धारयात्मानमात्मना ।
स्थिरङ्गममर्त्यानां सर्वेषामेष निर्णयः ।।

"विदुर ने महाभारत के अन्त में शोकसंतप्त धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा—"हे महाराज ! उठिए । क्यों यों भूमि पर पड़े हुए हैं ? अपने को अपने से धैर्य दीजिए । जगत् में चर-अचर सभी पदार्थों का और मरणधर्मा मनुष्य का अन्त होता है और मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।"

श्लोक ३

सर्वेक्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समस्त संचयों का अन्त है क्षय। समस्त उन्नतियों का अन्त है पतन। समस्त संयोगों का अन्त है वियोग। इसी प्रकार जीवन का अन्त है मरण।

श्लोक ४

यदा शूरं च भीरं च यमः कर्षति भारत ।
तत्कि न योत्स्यन्ति हि ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥

यमराज वीर को भी खींच कर ले जाते हैं, कायर को भी। पर क्या यह जान कर क्षत्रिय युद्ध से विरत होंगे?

श्लोक ५

अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति ।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते ॥

जो नहीं लड़ता है वह मारा जाता है और लड़ने वाला भी जीवित बचता है। हे महाराज! काल के आ जाने पर उस का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है।

श्लोक ६

न चात्येतान्हतान्युद्धे राजन् शोचितुमर्हसि ।
प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम् ॥

युद्ध में जो मारे गये हैं, उन के लिए आप को शोक नहीं करना चाहिए। यदि शास्त्रों को आप प्रमाण मानते हैं तो युद्ध में मारे गये शत्रु परम गति को प्राप्त हो गये।

श्लोक ७

सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः ।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिवेदना ॥

वे सभी वेदों का अभ्यास करने वाले थे, वे सभी व्रतों का आचरण करने वाले थे, वे सभी युद्ध में सामने लड़ते हुए मारे गये। उनके बारे में क्या शोक!

श्लोक ८

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः ।
न ते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी अदृश्य जगत् से आये थे। फिर सभी अदृश्य जगत् में चले गये। न वे तुम्हारे कोई थे, न तुम उनके कोई हो। तब क्या शोक !

श्लोक १२

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥

इस संसार में विभिन्न योनियों में भ्रमण करते हुए हजारों माता-पिता बनते हैं, सैकड़ों स्त्री-पुत्र का सुख देते हैं। किन्तु किसके वे होते हैं और हम किसके होते हैं ?

श्लोक १३

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम ॥

हजारों जगहें हैं शोक की, सैकड़ों जगहें हैं भय की। दिन-प्रतिदिन मूर्ख प्राणी इनसे आविष्ट होता है, पर जो पण्डित हैं, उसके ऊपर इन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

श्लोक १४

न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम् ।
न मध्यस्थः क्वचित्कालः सर्वं कालः प्रकर्षति ॥

न काल का कोई प्रिय है, न काल का कोई शत्रु, न काल का कोई मध्यस्थ । काल बिना किसी भेदभाव के सबको खींच कर ले जाता है।

श्लोक १५

अनित्यं जीवितं रूपं यौवनं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येदेषु न पण्डितः ॥

जीवन, रूप, यौवन, धन, आरोग्य और प्रिय लोगों के साथ अप्रिय लोगों का साहचर्य, ये सभी अनित्य हैं। पण्डित को इनका लोभ नहीं करना चाहिए।

श्लोक १६

न जानिपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।
अप्यभावेन युज्येत् तच्चास्य न निवर्तते ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो दुःख पूरे जनपद का है, आप उसे अपना अकेला मान कर शोक न करें, क्योंकि शोक में आप शरीर त्याग भी दें तो भी वह दुःख दूर नहीं होगा।

श्लोक १७

अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत्पराक्रमम् ।
भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतान्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि विवर्धते ॥

मनुष्य यदि अपने पराक्रम की ओर देखे तो बिना शोक किए ही शोक का प्रतिकार कर सकता है। दुःख की एक ही औषधि है कि उसके बारे में सोचना छोड़ दे। सोचने पर वह कम नहीं होता, बल्कि उलटे बढ़ता ही है।

श्लोक १८

अनिष्टसम्प्रायोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च ।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते येऽल्पबुद्धयः ॥

अल्प बुद्धि वाले मनुष्य ही अप्रिय वस्तु के मिलने से और प्रिय के बिछुड़ने से मन में दुःख पाते हैं।

श्लोक १९

नार्थो न धर्मो न सुखं यदेतदनुशोचसि ।
न च नापैति कार्योर्थात्त्रिवर्गाच्चैव भ्रश्यते ॥

दुःख करने से अर्थ, धर्म, काम कुछ भी सिद्ध नहीं होता। प्रत्युत मनुष्य कर्त्तव्य से च्युत हो जाता है और धर्म, अर्थ, काम तीनों से वंचित हो जाता है।

श्लोक २०

अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ।
असंतुष्टाः प्रमुह्यन्तिं संतोषं यान्ति पण्डिताः ॥

असन्तुष्ट मनुष्य जैसे-जैसे धन कमाता है वैसे-वैसे और असन्तुष्ट हो जाता है। परन्तु पण्डित प्रत्येक स्थिति में सन्तुष्ट रहते हैं।

श्लोक २१

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छरीर मोषधैः ।
एतज्ज्ञानस्य सामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन के दुःख को प्रज्ञा से, शरीर के दुःख को औषधि से मारना चाहिए। यही ज्ञान का अर्थ है। मनुष्य को बच्चों की तरह विह्वल नहीं होना चाहिए।

श्लोक २२

शयानं चानुशयति तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति ।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम् ॥

पूर्व जन्म में जो आदमी कर्म किये रहता है, वह कर्म मनुष्य के साथ सोता है, मनुष्य के साथ उठ खड़ा होता है और मनुष्य के पीछे-पीछे दौड़ता रहता है।

श्लोक २३

यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥

जिस-जिस अवस्था में जो-जो शुभ या अशुभ कर्म मनुष्य करता है, उसी-उसी अवस्था में उसका वैसा ही शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता है।

'स्त्रीपर्व' (अध्याय ३)

श्लोक ९-१३

यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते ।
किञ्चित्प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापिवा ॥
छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा ।
आर्द्रं वाप्यथ वा शुष्कं पच्यमानमथापि वा ॥
अवतार्यमाणमापाकादुद्धृतं वापि भारत ।
अथ वा परिभुज्यन्तमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥
गर्भस्थो वा प्रसूतो वाप्यथ वा दिवसान्तरः ।
अर्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपि वा ॥
संवत्सरगतो वापि द्विसंवत्सर एव वा ।
यौवनस्थोऽपि मध्यस्थो वृद्धो वापि विपद्यते ॥

जैसे कोई मिट्टी का बर्तन बनाते समय चाक पर चढ़ाते ही टूट जाये, कोई बर्तन बनते समय टूट जाये, कोई पूरा बन कर टूट जाये, कोई सूत से काटते समय टूट जाये, कोई चाक से उतारते समय टूट जाये, कोई उतारने पर गीला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही रहे और टूट जाये, कोई सूख जाने पर भी टूट जाये, कोई आँवाँ में रखते समय टूट जाये, कोई आँवाँ से उतारते समय टूट जाये, कोई रसोई से उठाते समय टूट जाये, कोई खाते समय टूट जाये, ऐसे ही प्राणियों के शरीर की बात है। कोई गर्भ में ही मर जाता है, कोई प्रसव के होते ही मर जाता है, कोई कुछ दिनों बाद, कोई पन्द्रह दिन का होकर, कोई महीने भर का होकर, कोई एक या दो वर्ष का होकर, कोई भरी जवानी में, कोई बूढ़ा होकर मर जाता है।

५. भवाटवी

स्त्रीपर्व (अध्याय ३)

श्लोक २

अत्र ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे।
यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः ॥

विदुर बोले—"मैं भगवान् स्वयंभू को प्रणाम करके संसार रूपी गहन वन का उसी भाषा में वर्णन करूँगा जिस भाषा में महर्षियों ने किया।

श्लोक ३-५

कश्चिन्महति संसारे वर्तमानो द्विजः किल।
वनं दुर्गमनुप्राप्तो महत्क्रव्यादसंकुलम् ॥
सिंहव्याघ्रगजाकारैरतिघोरैर्महाशनैः।
समन्तात्संपरिक्षिप्तं मृत्योरपि भयप्रदम् ॥
तदस्य दृष्ट्वा हृदयमुद्वेगमगमत्परम्।
अभ्युच्छ्रयश्च रोम्णां वै विक्रियाश्च परंतप ॥

इस विशाल संसार में कोई एक ब्राह्मण था। एक दिन भयंकर हिंस्र पशुओं से संकुल दुर्गम वन में जा पहुँचा। वहाँ अत्यन्त भयानक और महाभक्षी सिंह, व्याघ्र, गज चारों ओर बसे हुए थे। उस वन को देख कर मृत्यु भी भयभीत होती थी। ब्राह्मण का हृदय इस वन को देख कर घबड़ा उठा। रोंये खड़े हो गये। मन विक्षिप्त हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लोक ६-७

स तद्वनं व्यनुसरन्विप्रधावन्नितस्ततः ।
वीक्षमाणो दिशः सर्वाः शरणं क्व भवेदिति ॥
स तेषां छिद्रमविच्छन्प्रद्रुतो भयपीडितः ॥
न च निर्याति वै दूरं न च तैर्विप्रयुज्यते ॥

वह ब्राह्मण इधर-उधर शरण ढूँढ़ने लगा। चारों दिशाओं में उसे कहीं शरण नहीं दिखी। वही हिंस्र प्राणियों के रहने की जगहें यहाँ-वहाँ देखता हुआ और भी भयभीत होकर दौड़ने लगा पर वह वन से निकल नहीं सका। वह उन हिंस्र पशुओं से पीछा नहीं छुड़ा सका।

श्लोक ८-९

अथापश्यद्वनं घोरं समन्ताद्वागुरावृतम् ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वक्तं स्त्रिया परमघोरया ॥
पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः ।
नभः स्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम् ॥

इतने में उसने देखा कि उस वन के चारों ओर एक महाजाल पड़ा है और भयंकर स्त्री ने उस जाल को अपनी बाँहों में समेट रखा है। पर्वत के समान ऊँचे पाँच सिर वाले (नागों) से और (आकाशचुम्बी) महावृक्षों से वह वन चारों ओर से घिरा हुआ है।

श्लोक १०-१२

वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः ।
वल्लीभिस्तृणछन्नाभिर्गूढाभिरभिसंवृतः ॥
पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ।
विलग्नश्चाभवत्तस्मिंल्लतासंतानसंकटे ॥
पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम् ।
स तथा लम्बते तत्र ऊर्ध्वपादोऽप्यधःशिराः ॥

इतने में वह वन के बीच में घास-फूस से ढकी हुई लताओं से न दिखने वाले एक कुएँ में गिर पड़ा। उस कुएँ में वह नीचे नहीं गया। लताओं के वितान में उलझकर लटक गया। उसका पैर ऊपर लताओं में फँस गया। सिर नीचे लटक गया जैसे कटहल का बड़ा-सा फल डंठल में लटका हुआ हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्लोक १३-२२

अथ तत्रापि चान्योऽस्य भूयो जात उपद्रवः ।
कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम् ॥
षड्वक्त्रं कृष्णशबलं द्विषट्कपदचारिणम् ।
क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ॥
तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः ।
नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः ॥
आसते मधु संभृत्य पूर्वमेव निकेतजाः ॥
भूयोभूयः समीहन्ते मधूनि भरतर्षभ ।
स्वादनीयानि भूतानां न यैर्बालोऽपि तृप्यते ॥
तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते सदा ।
तां लम्बमानः स पुमान्धारां पिबति सर्वदा ।
न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य संकटे ॥
अभीप्सति च तां नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः ।
न चास्य जीविते राजन्निर्वेदः समजायत ॥
तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता ।
कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति स्म मूषकाः ॥
व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया, च परमोग्रया ।
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च ॥
वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषकेभ्यश्च पञ्चमम् ॥
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद्भयम् ॥
एवं स वसते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे ॥
न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति ॥

इसी बीच में एक दूसरा उपद्रव आ खड़ा हुआ । ब्राह्मण ने लटके-लटके देखा कि कुएँ के मुहाने पर एक वड़ा मतवाला हाथी आकर खड़ा हो गया । उसके छः मुँह थे । वह चितकबरे रंग का था । उसके बारह पैर थे और वह उस लता वितान से ढके हुए कुएँ की तरफ धीरे-धीरे झूमता हुआ आ रहा था । जिस पेड़ की शाखा पर ब्राह्मण लटका हुआ था, उस की छोटी-छोटी डालियों पर भयंकर रंग-बिरंगी मधुमक्खियाँ छत्ता बना कर उस छत्ते को घेर कर बैठी थीं । मधु-मक्खियाँ बार-बार शहद पीना चाहती थीं जिसे चख कर बालक कभी तृप्त नहीं होते । शहद की धारा बराबर झर रही थी और लटका हुआ ब्राह्मण उसे पी रहा था । घोर संकट में भी शहद पीते हुए उस की तृप्ति नहीं हो रही थी । बार-बार उसे पीने की इच्छा होती थी और मृत्यु के आसन्न भय को अनदेखा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हुए उसे जीवन से लगाव भी बना रहा, विरक्ति नहीं हुई। शहद के कारण जीवित रहने की आशा मन में जगी। इतने में उसने देखा कि वृक्ष से लटकी हुई जिस लता को वह पकड़े हुए है उसे सफेद और काले चूहे कुतर रहे हैं। इस प्रकार वह छः भयों से घिरा हुआ था। हिंस्र सर्पों और व्याघ्रों से, जाल थामने वाली स्त्री से, कुएँ के नीचे बैठे हुए नाग से, और कुएँ के मुहाने पर आये हुए हाथी से, चूहों के द्वारा कुतरे जाते हुए वृक्ष के गिरने से तथा मधु के लोभ के कारण मधुमक्खियों से। तब भी उस संसार रूपी अटवी में भयों से घिरा हुआ जीविताशा नहीं छोड़ पा रहा है।"

अध्याय ६

श्लोक १-३

अहो खलु महद्दुःखं कृच्छ्रवासं वसत्यसौ ।
कथं तस्य रतिस्तत्र तुष्टिर्वा वदतां वर ।।
स देशः क्व नु यत्रासौ वसते धर्मसंकटे ।
कथं वा स विमुच्येत नरस्तस्मान्महाभयात् ।।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व साधु चेष्टामेह तथा ।
कृपा मे महती जाता तस्याभ्युद्धरणेन च ।।

धृतराष्ट्र ने पूछा कि ब्राह्मण महान् दुःख में पड़ कर इतनी कठिन स्थिति में रहता हुआ कैसे भला प्रसन्न और सन्तुष्ट रह पाया होगा। वह देश कहाँ है, जहाँ पर वह ब्राह्मण ऐसे धर्मसंकट में पड़ा हुआ है और कौन-सा उपाय है जिससे उस को इस महाभय से मुक्ति मिले। उपाय जान जायें तो हम सब उस के उद्धार की चेष्टा करें। उस के ऊपर मुझे बहुत दया आ रही है।

श्लोक ४-१२

उपमानमिदं राजन्मोक्षविद्भिरुदाहृतम् ।
सुगतिं विन्दते येन परलोकेषु मानवः ।
यत्तदुच्यति कान्तारं महत्संसार एव सः ।
वनं दुर्गंहि यत्त्वेतत्संसारगहनं हि तत् ।।
ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्तिताः ।
या सा नारी बृहत्काया अधितिष्ठति तत्र वै ।
तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा वर्णस्य विनाशिनीम् ।।
यस्तत्र कूपो, नृपते स तु देहः शरीरिणाम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्तत्र वसतोऽधस्तान्महाहिः काल एव सः ।
अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ ॥
कूपमध्ये या जाता वल्ली यत्र स मानवः ।
प्रताने लम्वते सा तु जीविताशा शरीरिणाम् ॥
स यस्तु कूप वीनाहे सम्पत्य परिसर्पति ।
षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन् तु संवत्सर सः स्मृतः ।
मुखानि ऋतवो मासाः पादा द्वादश कीर्तिताः ॥
ये तुं वृक्षं निकृन्तन्ति मूषकाः सततोत्थिताः ।
रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भुतानां परिचिन्तकाः ।
ये मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः ॥
यास्तु ता बहुशो धाराः स्रवन्ति मधुनिस्रवम् ।
तांस्तु कामरसान्विद्याद्यत्र मज्जन्ति मानवाः ॥
एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तिं स्म ये विदुः ।
ते वै संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः ॥

विदुर बोले—"मैंने जो यह कहानी सुनाई है इसे मोक्षवेत्ता ऋषियों ने मनुष्य की सद्गति के लिए प्रस्तुत किया है। संसार की वास्तविकता को समझने के लिए एक पद्धति वनायी है। जिस जंगल में वह ब्राह्मण पड़ा था वह यह घोर संसार ही है ! इसका भीतर ही दुर्गम भाग संसार का ही एक जटिल रूप है। इस वन को घेरने वाले साँप व्याधियाँ हैं। महाकाय स्त्री जो जाल समेटे वहाँ है, वह यौवन और रूप का नाश करने वाली जरा (बुढ़ापा) है। कुआँ यह देह है जिसके भीतर रहने वाला साँप महाकाल है। वह समस्त प्राणियों का अन्तक है। समस्त संचय का अपहर्ता है। कुएँ में उगी हुई लता मनुष्यों की जीविताशा है। कुएँ के मुहाने पर धीरे-धीरे चल कर आने वाला हाथी संवत्सर है। छः ऋतुएँ उसके मुख हैं, वारह महीने उसके पैर। वृक्ष को काटने वाले सफेद और काले चूहे दिन और रात हैं। शहद की मक्खियाँ कामनाएँ हैं और शहद कामनाओं का रस है, लगाव है। मनुष्य इन्हीं में डूब कर नष्ट होता है। जो लोग संसार-चक्र की इस गति को समझ लेते हैं, वे ही इसके बन्धन काट सकते हैं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६. युधिष्ठिर का अनुताप

शान्ति पर्व (अध्याय ७)

श्लोक १-२

युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा शोकव्याकुलचेतनः ।
शुशोच दुःखसन्तप्तः स्मृत्वा कर्णं महारथम् ।।
आविष्टो दुःखशोकाभ्यां निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
दृष्ट्वार्जुनमुवाचेदं वचनं शोककर्शितः ।।

धर्मात्मा युधिष्ठिर महारथी कर्ण का स्मरण कर दुःख-संतप्त हो गये । दुःख और शोक में आविष्ट होकर लम्बी साँस छोड़ते हुए अर्जुन से यह कहा :

श्लोक ३-५

यद्भैक्षमाचरिष्याम वृष्ण्यन्धकपुरे वयम् ।
ज्ञातीन्निष्पुरुषान्कृत्वा नेमां प्राप्स्याम दुर्गतिम् ।।
अमित्रा नः समृद्धार्था वृत्तार्थाः कुरवः किल ।
आत्मानमात्मना हत्वा किं धर्मफलमाप्तुमः ।।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ।
धिगस्त्वमर्षं येनेमामापदं गमिता वयम् ।।

यदि हम लोग युद्ध न करके वृष्णियों, और अंधकों की पुरी द्वारिका में भिक्षावृत्ति कर के जीवन विताते तो हम लोग अपने सम्बन्धियों और सगोत्रियों के नाश के कारण न बनते और इस दुर्गति को प्राप्त नहीं होते । आज तो हमारे शत्रु कौरव ही अधिक भाग्यशाली हैं क्योंकि वे लोग युद्ध में मृत्यु का वरण करके स्वर्ग चले गये हैं और हम लोगों ने अपने बल से अपने ही लोगों की हत्या कर के कौन-सा धर्म-फल पा लिया ?क्षत्रियों के आचार को धिक्कार है । क्षत्रियों के बल-पुरुषार्थ को धिक्कार है और उस अमर्ष को धिक्कार है जिसके कारण हम बन्धुनाश के इस दुरन्त शोचनीय अवस्था में आ पहुँचे हैं ।

श्लोक ६-९

साधुक्षमा दमः शौचमवैरोध्यममत्सरः ।
अहिंसा सत्यवचनं नित्यानि वनचारिणाम् ।।
वयं तु लोभान्मोहाच्च स्तम्भं मानं च संश्रिताः ।
इमामवस्थामापन्ना राज्यलेशबुभुक्षया ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रैलोकस्यापि राज्येन नास्मान्कश्चिन्प्रहर्षयेत् ॥
बान्धवान्निहतान्दृष्ट्वा पृथिव्यामामिषैषिणः ॥
ते वयं पृथिवीहेतोरवध्यान्पृथिवीसमान् ।
संपरित्यज्य जीवामो हीनार्था हतबान्धवाः ॥

बनवासी ऋषियों-मुनियों का आचार ही उत्तम है, जिसमें क्षमा, संयम, पवित्रता, अविरोध अमत्सर, अहिंसा और सत्य ही प्रतिष्ठित रहते हैं। और हम लोग हैं कि लोभ-मोह के वश में होकर तर्क और अभिमान का आश्रय लेकर राज्य के टुकड़े की भूख के कारण इस अवस्था को पहुँच गये हैं। पृथ्वी की विजय की अभिलाषा करने वाले अपने बन्धु-बान्धवों को मारे हुए देख कर ऐसा लगता है कि हम लोगों को कोई तीनों लोकों का राज्य दे दे तो भी हमारी भूख नहीं मिटेगी। कितने दुःख की बात है इस पृथ्वी के लिए हम पृथ्वी के समान महनीय और अवध्य आत्मीय जनों को मारकर निष्प्रयोजन व बन्धु-बान्धव रहित अभागा जीवन जीने के लिए बच गये हैं।

श्लोक १०-१२

आमिषे गृध्यमानानामशुनां नः शुनामिव ।
आमिषं चैव नो नष्टमामिषस्य च भोजिनः ॥
न पृथिव्या सकलया न सुवर्णस्य राशिभिः ।
न गवाश्वेन सर्वेण ते त्याज्या य इमे हताः ॥
संयुक्ताः काममन्युभ्यां क्रोधमर्षसमन्विताः ।
मृत्युयानं समारुह्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥

जैसे माँस के लोभ में कुत्ते आपस में लड़ते रहते हैं वैसे ही राज्य के लोभ में लड़ते रहे। माँस के टुकड़े की तरह वह राज्य भी चला गया और राज्य को भोगने वाले सहभागी भी चले गये। वे लोग जो मारे गये हैं, वे किसी भी मूल्य पर मारे जाने लायक नहीं थे। न समस्त पृथ्वी के मूल्य पर, न स्वर्णराशि के मूल्य, न गोधन और अश्वधन के मूल्य पर। ये सभी काम और आवेग से, क्रोध और अमर्ष से भरे हुए थे। पर मृत्यु के विमान पर चढ़ कर ये सभी परलोक चले गये।

श्लोक १३-१६

बहु कल्याणमिच्छन्त ईहन्ते पितरः सुतान् ।
तपसा ब्रह्मचर्येण वन्दनेन तितिक्षया ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपवासैस्तथेज्याभिर्व्रत कौतुक मंगलैः ।
लभन्ते मातरो गर्भास्तान्मासान्दश बिभ्रति ॥
यदि स्वस्ति प्रजायन्ते जाता जीवन्ति वा यदि ।
संभाविता जातबलास्ते दद्युर्यदि नः सुखम् ।
इह चामुत्र चैवेति कृपणाः फलहेतुकाः ॥
तासामयं समारम्भो निवृत्तः केवलोऽफलः ।
यदासां निहताः पुत्रा युवानो मृष्टकुण्डलां ॥
अभुक्त्वा पार्थिवान्भोगानृणान्यपहाय च ।
पितृभ्यो देवताभ्यश्च गता वैवस्वतक्षयम् ॥
यदैषामङ्ग पितरौ जातौ काममयाविव ।
संजातबलरूपेषु तदैव निहता नृपाः ॥
संयुक्ताःकाममन्युभ्यां क्रोधहर्षासमञ्जसाः ।
न ते जन्मफलं किञ्चिदभोक्तारो जातु कर्हिचित् ॥

जिन माता-पिताओं की ये सन्तान थे, उन्होंने क्या-क्या कल्पना नहीं की होगी। पिताओं ने इनके कल्याण की कामना की होगी। माताओं ने तप, ब्रह्मचर्य, देवपूजा, तितिक्षा, उपवास, यज्ञ, व्रत और विविध मंगल—अनुष्ठानों के द्वारा इन्हें पुत्र रूप में पाने की कामना की होगी और दस माह तक इन्हें गर्भ में धारण किया होगा। माताओं ने क्या-क्या मन में संकल्प किया होगा कि सन्तान कुशल से जन्म लेगी, जन्म लेकर जीवित रहेगी, बड़ी होगी, बलशाली होगी, पद-प्रतिष्ठा का सम्मान पाएगी, हमें सुख देगी—इस लोक में भी, उस लोक में भी। कितनी दयनीय सिद्ध हुई उनकी फल की आशा। उन माताओं के संकल्प उनके व्रत-उपवास सब निष्फल हो गये। भरी जवानी में दमकते हुए कुण्डल पहने उनके लड़के युद्ध में मारे गये। अभी उनकी कितनी कच्ची उम्र थी? कोई भी पार्थिव भोग नहीं भोग पाये। वे कोई भी ऋण नहीं उतार पाये थे—न देव ऋण, न पितृ ऋण और दिवंगत हो गये। जिस समय इनके मां-बाप की आशा पूरी होने को आ रही थी और उनके पुत्र बल-रूपवान् हो रहे थे, उसी समय वे मारे गये। काम और आवेश से भरे हुए, क्रोध और हर्ष में भूलते हुए वे आशाओं के केन्द्र चले गये। उन्होंने मनुष्य जन्म पाने का कोई तो फल नहीं पाया। इन सबका पाप मेरे ऊपर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

७. काम गीता

'आश्वमेधिक पर्व' (अध्याय १३)

श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश

श्लोक १२-१७

नाहं शक्योऽनुपायेन हन्तुं भूतेन केनचित् ।
यो मां प्रयतते हन्तुं ज्ञात्वा प्रहरणे बलम् ॥
तस्य तस्मिन्प्रहरणे पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ।
यो मां प्रयतते हन्तुं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ॥
जङ्गमेष्विव कर्मात्मा पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ।
यो मां प्रयतते हन्तुं वेदैर्वेदान्तसाधनैः ।
स्थावरेष्विव शान्तात्मा तस्य प्रादुर्भवाम्यहम् ॥
यो मां प्रयतते हन्तुं धृत्या सत्यपराक्रमः ।
भावो भवामि तस्याहं स च मां नावबुध्यते ।
यो मां प्रयतते हन्तुं तपसा संशितव्रतः ।
ततस्तपसि तस्याथ पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥
यो मां प्रयतते हन्तुं मोक्षमास्थाय पण्डितः ।
तस्य मोक्षरतिस्थस्य नृत्यामि च हसामि च ।
अवध्यः सर्वभूतानामहमेकः सनातनः ॥

काम कहता है—"मैं ममता के त्याग के अलावा किसी दूसरे उपाय से मारा नहीं जा सकता । जो मुझे अस्त्र-बल से मारना चाहता है, मैं उसके अस्त्र-बल में अहंकार बन कर पुनः प्रविष्ट हो जाता हूँ और वह मेरे अधीन हो जाता है । जो मुझे विविध दक्षिणाओं वाले यज्ञ से मारने की कोशिश करता है, मैं जंगल-योनियों में उत्पन्न धर्मात्मा की तरह मैं उसके चित्त में दम्भ वन कर फिर प्रगट हो जाता हूँ । जो मुझे वेद-वेदान्त के अभ्यास से मारना चाहता है, मैं स्थावर योनियों में व्याप्त शान्त आत्मा की तरह उस के चित्त में बुद्धि वन कर प्रविष्ट हो जाता हूँ । जो सत्य के पराक्रम के द्वारा अपने धैर्य से मुझे नष्ट करना चाहता है मैं उस के मन का भाव बन कर प्रगट हो जाता हूँ, वह मुझे जान नहीं पाता । जो मुझे कठिन व्रत धारण करके तप से मारना चाहता है, मैं उस के तप का आकार ग्रहण कर लेता हूँ । जो मुझे मोक्ष मार्ग का अवलम्बन करके मारना चाहता है, मैं उसके मोक्ष की कामना बनकर नाचता व हँसता हूँ । मैं समस्त प्राणियों के लिए अवध्य हूँ ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काम जुड़ा हुआ है ममकार से। बड़े से बड़ा प्रयत्न करके भी जब तक मम की भावना है, तब तक काम के प्रति आसक्ति नहीं जा सकती।

८. आनृशंस्य

'महाप्रस्थानिक पर्व', (अध्याय ३) :
युधिष्ठिर-इन्द्र संवाद

श्लोक ७

अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह।
स गच्छेत मया सार्धमानृशंस्या हि मे मतिः।

युधिष्ठिर फिर बोले—"हे भूत और भविष्यत् के ईश्वर! यह कुत्ता मेरे साथ सदा से रहा है इसे मेरे साथ स्वर्ग जाने दीजिए। मेरी मानववृत्ति यही कहती है।"

श्लोक ८

अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राजश्रियं कृत्स्नां महत्तां चैव कीर्तिम्
संप्राप्तोऽथ स्वर्गसुखानि च त्वं त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ।।

इन्द्र बोले—"तुम मरणधर्मा मनुष्य न रहकर मेरे समान देवत्व को प्राप्त हो गये हो। समग्र लक्ष्मी, महती कीर्ति और स्वर्ग-सुख अर्जित किया है। तुम इस कुत्ते को छोड़ दो। इसमें तुम्हारी कोई नृशंसता नहीं है।"

श्लोक ९

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र शक्यं कर्त्तु दुष्करमेतदार्य।
मा मे श्रिया संगमनं तथास्तु यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम्।

युधिष्ठिर बोले—"हे हजार आँखों वाले! यह दुष्कर व अनार्य कर्म मुझसे नहीं हो सकता। मुझे ऐसी श्री नहीं चाहिए, जिसके कारण मुझे भक्त को छोड़ना पड़े।"

श्लोक १०

स्वर्ग लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्यमिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्र बोले—"कुत्ते वालों के लिए स्वर्ग में कोई स्थान नहीं है। ऐसे लोगों का पुण्य-फल क्रोधवश नाम के राक्षस हरा करते हैं। इसलिए हे धर्मराज युधिष्ठिर! विवेक से काम लो। इस कुत्ते को छोड़ो। इसमें कोई नृशंसता नहीं है।"

श्लोक ११

भक्तत्यागं प्राहुरत्यन्तपापं तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन।
तस्मान्नाहं जातु कथंचनाद्य त्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र॥

युधिष्ठिर बोले—"इस लोक में भक्त का त्याग ब्रह्महत्या से बढ़कर बड़ा पाप माना गया है। अतः किसी भी प्रकार इस कुत्ते को नहीं छोड़ूँगा।"

श्लोक १२-१३

शुनादृष्टं क्रोधवशा हरन्ति यद्दत्तमिष्टं विवृतमथो हुतं च।
तस्माच्छुनस्त्यागमिमं कुरुष्व शुनस्त्यागात्प्राप्स्ये देवलोकम्॥
त्यक्त्वा भ्रातरन्दयितां चापि कृष्णां प्राप्तो लोकः कर्मणा स्वेन वीर।
श्वानं चैनं न त्यजसे कथं नु त्यागं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य॥

इन्द्र बोले—"जिस दान, यज्ञ, स्वाध्याय, हवन को कुत्ता देख ले, उसका फल नष्ट हो जाता है, इसलिए स्वर्गलोक जाते समय कुत्ते का त्याग करके ही आप स्वर्गलोक में प्रवेश कर सकेंगे। तुमने भाइयों को छोड़ा, अपनी प्रियतमा द्रौपदी को छोड़ा। अपने कर्म के बल पर स्वर्गलोक को प्राप्त किया। सबके छोड़ते समय तुम्हें मोह नहीं हुआ, इस कुत्ते को क्यों नहीं छोड़ पा रहे हो?"

श्लोक १४-१५

न विद्यते संधिरथापि विग्रहो मृतैर्मर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा।
न ते मया जीवयितुं हि शक्या तस्मात्त्यागस्तेषु कृतो न जीवताम्॥
प्रतिप्रदानं शरणागतस्य स्त्रिया बधो ब्राह्मणस्वापहारः।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे॥

युधिष्ठिर बोले—"यह लोक में प्रसिद्ध है कि जब मनुष्य मर जाता है, तो उसके साथ न मैत्री रह जाती है, न शत्रुता। मैं अपने भाइयों और द्रौपदी को प्रयत्न करने पर भी जिला नहीं सकता। इसलिए मैंने उनका मोह नहीं किया। अगर वे जीते रहते तो मैं उनका परित्याग न करता। हे इन्द्र! चार बड़े पातक कहे गये हैं—शरणागत को शरण से लौटा देना, स्त्री का वध, ब्राह्मण की सम्पत्ति का अपहरण और मित्रद्रोह। उन सबके बराबर मैं भक्त के त्याग को महापातक मानता हूँ।" □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिशिष्ट-२

महाभारत के आख्यान, उपाख्यान और इतिहास (कथा-निदर्शन)

आदिपर्व के आख्यान एवं उपाख्यान

१. उत्तंक उपाख्यान (अध्याय ३)

विशेष विवरण—गुरु दक्षिणा में माँगने पर पोष्य के कुण्डल लाने के लिए उत्तंक का जाना, तक्षक द्वारा हरण और नागलोक से इन्द्र की कृपा से कुण्डल का उद्धार।

२. भृगुवंश विस्तार का आख्यान (अध्याय ५ से १२ तक)

विशेष विवरण—भृगु और भृगु पत्नी पुलोमा का उपाख्यान, पुलोमा के गर्भ से च्यवन की उत्पत्ति, भृगु द्वारा अग्नि को शाप, च्यवन-सुकन्या से प्रमाति की उत्पत्ति, प्रमाति से घृताची—अप्सरा के गर्भ से रुरु की उत्पत्ति। रुरु और प्रमदवरा का विवाह।

३. आस्तीक उपाख्यान (अध्याय १३)

विशेष विवरण—जरत्कारु कन्या से आस्तीक की उत्पत्ति।

४. अध्याय १४—में कद्रु और विनता की प्रतिस्पर्धा

५. अध्याय १५+१६+१७ में अमृत के लिए समुद्र-मन्थन

६. अध्याय १४-३४ तक कद्रु-विनता उपाख्यान, कद्रु के पुत्रों सर्पों और नागों और विनता के पुत्र गरुड़ के बीच संघर्ष और कद्रु द्वारा अपने पुत्रों को शाप, ब्रह्मा द्वारा शापमुक्ति का उपाय।

७. अध्याय ४१ से ४४ तक—विस्तार में जरत्कारु की कथा, आस्तीक उपाख्यान का प्रारम्भ, जरत्कारु से वासुकि का आग्रह कि वह उनकी बहिन को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पत्नी के रूप में ग्रहण करे। जरत्कारु का पत्नी-त्याग, जरत्कारु के गर्भ से आस्तीक की उत्पत्ति।

८. अध्याय ४५ से ५३ तक—जनमेजय के नागयज्ञ की कथा। आस्तीक द्वारा नागयज्ञ की समाप्ति और वैशम्पायन से जनमेजय का भारत-आख्यान श्रवण प्रारम्भ।

९. अध्याय ६२ से ६९ तक—दुःषन्त—शकुन्तला आख्यान, मेनका-विश्वामित्र से शकुन्तला की उत्पत्ति का उपाख्यान।

१०. अध्याय ७१ से ८८ तक—ययाति-आख्यान

विशेष—दैवयानी—शर्मिष्ठा की स्पर्धा की कथा। ययाति को शुक्र द्वारा बुढ़ापे का शाप। ययाति को अपने श्वसुर शुग्र से अकाल वृद्ध होने का शाप। ययाति को अपने पुत्रों में से पुरु से यौवन दानरूप में मिलना और पुरु का राज्याभिषेक करके ययाति का स्वर्ग से पतन। अष्टक के प्रयत्न से ययाति की पुनः स्वर्ग-प्राप्ति।

११. अध्याय ९१ से ९४ तक—शान्तुनु—गंगा उपाख्यान, भीष्म की उत्पत्ति शान्तुनु का सत्यवती (दाशराज की कन्या) से विवाह। भीष्म की भीष्म-प्रतिज्ञा।

१२. अध्याय ९८ में—उत्तथ्य की कथा। ममता से से दीर्घतमा की उत्पत्ति।

१३. अध्याय १०१ में—अणीमाण्डव्य कथा। अणीमाण्डव्य द्वारा अभिशप्त धर्म का शूद्र योनि में, विदुर के रूप में उत्पत्ति।

१४. अध्याय १६५ से १७३ तक—विश्वामित्र—वशिष्ठ संघर्ष कथा। पराशर के कहने पर वशिष्ठ द्वारा क्रोध-त्याग।

१५. अध्याय १८९ में—द्रौपदी के पूर्वजन्म-वृत्तान्त की कथा

१६. अध्याय २०१-२०४ तक—तिलोत्तमा के कारण सुन्द-उपसुन्द का आपस में लड़कर नष्ट होना।

अरण्य पर्व के आख्यान-उपाख्यान

१. सौभवध का उपाख्यान (अध्याय १५ से २३ तक)

विशेष विवरण—द्यूत के समय अपने अनुपस्थित रहने के कारण बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का सौभवध का उपाख्यान कहना। युधिष्ठिर की राजसूय में शिशुपाल का भगवान द्वारा वध, उसका समाचार सुन कर शिशुपाल के भाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शाल्वराज का क्रोधित होकर कृष्ण से शून्य द्वारिका पर आक्रमण। कृष्ण के पुत्र साम्ब, प्रद्युम्न आदि का शाल्व से युद्ध। प्रद्युम्न तथा शाल्व का युद्ध, शाल्व द्वारा प्रद्युम्न की पराजय। होश में आने पर प्रद्युम्न का दिव्यास्त्रों के द्वारा शाल्व को पीड़ित करना, अन्त में उसके वध के लिए अजेय शर का सन्धान करना। श्रीकृष्ण का लौट कर द्वारिका के विध्वंस को देख कर क्रोधित होना। शाल्ववध की प्रतिज्ञा करके युद्ध के लिए भगवान् का प्रस्थान, शाल्व का माया युद्ध, अन्त में भगवान् के द्वारा शाल्व तथा उसके नगर सौम का विनाश।

२. प्रह्लाद और विरोचन संवाद (अध्याय २९ में)

विशेष विवरण—प्रह्लाद और विरोचन के पुत्र बलि का संवाद। प्रह्लाद द्वारा बलि को क्षमा और क्रोध का महत्त्व एवं दोष बताना। यथासमय क्रोध एवं क्षमा दोनों ही का विशेष महत्त्व है।

३. नलोपाख्यान (अध्याय ४९ से ७८ तक)

विशेष विवरण—नैषध के राजा भीमसेन का पुत्र नल तथा विदर्भराज भीम की पुत्री दमयन्ती का विवाह। पुष्कर का छल से राजा नल को जुए में जीतना। नल का पराभव। जुए में मस्त होकर नल सोना, चाँदी, हाथी, घोड़े इत्यादि सभी दाँव पर लगा देते हैं, अन्त में पुष्कर का दयमन्ती को बाजी लगाने को कहना। नल का पुष्कर पर क्रुद्ध होना। नल-दमयन्ती का वन गमन वन में दमयन्ती को छोड़ कर नल का चला जाना। दमयन्ती को सर्पदंश, शिकारी द्वारा प्राण रक्षा तथा मोहित होकर कामेच्छा व्यक्त करना। दमयन्ती का क्रुद्ध होकर उसे शाप देना। दमयन्ती विलाप। अन्त में नल दमयन्ती का मिलन।

४. अगस्त्योपाख्यान (अध्याय ४९ से लेकर १०३ तक)

विशेष विवरण—लोमश ऋषि के द्वारा अगस्त्य का उपाख्यान। इल्वल का वातापि को बकरा बना कर ऋषियों को खिलाना। पुकारे जाने पर वातापि का पेट फाड़ कर निकल आना। इसी बीच सन्तान के अभाव में अगस्त्य का अपने पितरों का गड्ढे में नीचे मुँह किये हुए लटकते दिखाई देना। अतः सन्तानोत्पत्ति से प्रेरित होकर लोपामुद्रा से विवाह तथा उससे दृढदस्यु नामक पुत्र उत्पन्न करना। वृत्र-वध के लिए वज्र तैयार करने के निमित्त इन्द्र का दधीचि के पास उनकी हड्डियाँ माँगना। दधीचि का अस्थिदान। उन अस्थियों से बने वज्र से इन्द्र का वृत्र का मारा जाना। वृत्र वध के बाद असुरों का समुद्र में प्रवेश। अगस्त्य का समुद्रपान तथा विन्ध्य का गर्वहरण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५. सगरोपाख्यान तथा गंगावतरण उपाख्यान (अध्याय १०४ से १०८ तक)

विशेष विवरण —राजा सगर का अश्वमेध यज्ञ। अश्व की चोरी। सगर पुत्रों के द्वारा सागर खनन। कपिल के आश्रम में अश्व को देखकर सगर पुत्रों का कपिल पर आक्षेप। क्रुद्ध हुए कपिल का सगरपुत्रों का भस्म करना। सगर के पौत्र असमंजस द्वारा अश्व लाने पर सगर के यज्ञ की समाप्ति। भगीरथ का तपस्या करके देव नदी गंगा को पृथ्वी पर लाना। गंगाजल से सगर पुत्रों का तर्पण तथा समुद्र का भरा जाना।

६. ऋष्यश्रृंग उपाख्यान (अध्याय ११० से ११४ तक)

विशेष विवरण —काश्यपगोत्री विभाण्डक के वीर्य से हिरणी में ऋष्यश्रृंग की उत्पत्ति। अंगराज लोमपाद के राज्य में अनावृष्टि। एक वेश्या के द्वारा लुभाकर ऋष्यश्रृंग को राज्य में लाना। राज्य में वृष्टि होना। प्रसन्न होकर लोमपाद का अपनी कन्या शान्ता का विवाह ऋष्यश्रृंग से करना।

७. परशुराम का उपाख्यान (अध्याय ११५ से ११७ तक)

विशेष विवरण—परशुराम के शिष्य अकृतव्रण के द्वारा परशुराम के जन्म का वृत्तान्त कहना। सहस्रवाहु कार्तवीर्य अर्जुन के द्वारा परशुराम के पिता जमदग्नि का वध। इस वध से क्रुद्ध होकर परशुराम का अर्जुन को मारना। क्षत्रिय संहार।

८. सुकन्योपाख्यान (अध्याय १२२ से १२४ तक)

विशेष विवरण—बूढ़े च्यवन की तपस्या। शर्याति की पुत्री सुकन्या का च्यवन की आँखें फोड़ना। प्रायश्चित्त के रूप में राजा का च्यवन को अपनी कन्या दे देना। सुकन्या की प्रार्थना पर अश्विनीकुमारों का बूढ़े च्यवन को युवा बना देना। च्यवन का अश्विनीकुमारों का सोमपान का अधिकारी बनाना। इन्द्र का विरोध। इन्द्र-वध के लिए च्यवन का कृत्या को उत्पन्न करना। भयभीत होकर इन्द्र की क्षमायाचना।

९. मान्धाता उपाख्यान (अध्याय १२६)

विशेष विवरण—राजा युवनाश्व द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ में पुत्र प्राप्ति के लिए अभिमन्त्रित जल को पी जाना। इसके वामपार्श्व को भेदकर एक पुत्र का उत्पन्न होना। इन्द्र के द्वारा उसका नामकरण।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०. सोमक उपाख्यान (अध्याय १२४ से १२८ तक)

विशेष विवरण—राजा सोमक सौ स्त्रियों के होने पर निःसन्तान थे। एक दिन अचानक एक स्त्री के गर्भ से 'जन्तु' नामक पुत्र का उत्पन्न होना। सोमक द्वारा सौ पुत्रों की कामना हेतु यज्ञ करना, उसमें अपने एक मात्र पुत्र 'जन्तु' की जबरदस्ती बलि देना। उसकी हव्यगंध से सौ स्त्रियों का एक साथ गर्भवती होना, राजा सोमक को सौ पुत्रों की प्राप्ति।

११. उशीनर उपाख्यान

विशेष विवरण—अग्नि और इन्द्र का कबूतर और बाज बन कर राजा शिवि के पास जाने तथा कबूतर के स्थान पर बाज के लिए शिवि का स्वयं को समर्पित कर देने पर अग्नि तथा इन्द्र का शिवि को वरदान देना।

१२. अष्टावक्रीय उपाख्यान (अध्याय १३२ से १३४ तक)

विशेष विवरण—धनप्राप्ति के लिए कहोड का जनक के पास जाना। जनक के दरबारी पण्डित बन्दी के द्वारा कहोड का शास्त्रार्थ में पराभव। बन्दी का कहोड को जल में डुबाकर मरवा देना। कहोड के पुत्र अष्टावक्र का अपने पिता की मृत्यु का समाचार जानकर स्वयं शास्त्रार्थ के लिए जाना और बन्दी को हराकर उसे मृत्यु दंड दिलवाना।

१३. यवक्रीतोपाख्यान (अध्याय १३५ से १३९ तक)

विशेष विवरण—यवक्रीत का रैम्य के आश्रम में जाकर रैम्य की पत्नी के साथ समागम करना। रैम्य द्वारा राक्षस भेजकर यवक्रीत को मरवाना। यवक्रीत के पिता का रैम्यका उसके बड़े पुत्र द्वारा मारे जाने का शाप देना। रैम्य के पुत्र अर्वावसु-परावसु का यज्ञ कराने के लिए जाना। परावसु को रात में आकर अँधेरे में अपने पिता रैम्य को पशु समझकर मार देना। ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करने के लिए परावसु का अर्वावसु को नियुक्त करना। अन्त में ब्रह्म हत्या से छूटकर पवित्र हो जाना।

१४. नहुष का शाप से अजगर होने का उपाख्यान (अध्याय १७८)

विशेष विवरण—अजगर के रूप में नहुष का भीम को अपना परिचय देना और भीम को पाश में बाँधना। भीम को न देखकर युधिष्ठिर का चिन्ता-कुल होना और ढूंढ़ते हुए भीम को अजगर के वश में देखना। नहुष के प्रश्नों के युधिष्ठिर के द्वारा उत्तर। प्रसन्न होकर अजगर का भीम को छोड़ना और नहुष का दिव्य रूप धारण करके स्वर्गलोक को प्रस्थान।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१५. वैन्य उपाख्यान (अध्याय १८३)

१६. सरस्वती गीत (अध्याय १८४)

गरुड़ और सरस्वती का संवाद

विशेष विवरण—पाण्डवों से मिलने भगवान् कृष्ण का आना। कृष्ण और पाण्डवों के सामने मार्कण्डेय का अनेक कथाओं का कहना। तार्क्ष्य-सरस्वती का संवाद।

१५. प्रलय और मत्स्यावतार का उपाख्यान (अध्याय १८५)

१६. मार्कण्डेय उपाख्यान (अध्याय १८६-१८७)

विशेष विवरण—प्रलय काल के बीच में मार्कण्डेय का घूमते-घूमते एक वट वृक्ष पर बालमुकुन्द का दर्शन। बालक के पेट में प्रवृष्ट होकर अनेक आश्चर्यों का दर्शन। मार्कण्डेय का भगवान् कृष्ण को ही आदिदेव बताना। युधिष्ठिर के पूछने पर मार्कण्डेय का चारों युगों के व्यवहार का वर्णन करना।

१६. मण्डूकोपाख्यान—मण्डूक और मण्डूकी उपाख्यान तथा वामदेव उपाख्यान (अध्याय १९०)

टिप्पणी—मण्डूकोपाख्यान, इन्द्रद्युम्नोपाख्यान, धुन्धुमारोपाख्यान, पतिव्रतोपाख्यान, धर्मव्याध का उपदेश, अंगिरसों की उत्पत्ति एवं उनका वर्णन, स्वाहा द्वारा ऋषि पत्नियों का रूप बना कर अग्नि के साथ समागम करना। अग्नि के वीर्य से स्कन्द की उत्पत्ति। इन्द्र के द्वारा महिषासुर का वध। इन्द्र द्वारा केशी राक्षस से देवसेना की रक्षा तथा स्कन्द और देवसेना के विवाह का वर्णन। ये सभी मार्कण्डेय समास्यापर्व में हैं।

१८. दीर्घजीवी उपाख्यान (अध्याय १९१)

विशेष विवरण—मार्कण्डेय के अतिरिक्त इन्द्रद्युम्न, नारीजन बगुला, अकूपार कछुवा, और प्राकारकर्म उल्लू एवं अन्य दीर्घजीवियों की कथा।

१९. वैन्य उपाख्यान (अध्याय १९३)

विशेष विवरण—महाराज वैन्य के द्वारा अश्वमेध यज्ञ के लिए दीक्षा धन की कामना से अत्रि मुनि का वहाँ जाना तथा वैन्य की स्तुति। वैन्य द्वारा धन प्राप्ति का वरदान।

२०. तार्क्ष्य और सरस्वती का संवाद (अध्याय १८४)

विशेष विवरण—सरस्वती द्वारा तार्क्ष्य को धर्म और कर्म का सुदुपदेश। तार्क्ष्य द्वारा अग्निहोत्र का सनातन नियम पूछना। सरस्वती द्वारा यह बताना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

कि श्रद्धालु और सत्यव्रत व्यक्ति अग्निहोत्री हो तथा सरस्वती द्वारा यह बताना कि इन्द्र, अग्नि और मरुद्गण जिसकी प्राप्ति के लिए यज्ञ से यज्ञ करते हैं, वह परब्रह्म ही मेरा प्राप्य स्थान है।

२१. प्रलय और मत्स्य का उपाख्यान (अध्याय १८५)

विशेष विवरण—विरजा नदी के तीर पर भीगे वस्त्र और चीर और जटाधारी मनु के पास मत्स्य की उद्धार के लिए कामना करना। विवस्वान् के पुत्र मनु का उसे पकड़ कर जलपात्र में छोड़ना, उसका पुत्रवत् पालन-पोषण बड़ा होने पर गंगा में डालना और बड़ा आकार होने पर उसे समुद्र में डालना। प्रलय काल के सन्निकट होने पर मनु का सप्तऋषियों सहित उसमें चढ़ना, सब वस्तुओं के बीजों को उसमें क्रम में रखना। मत्स्य का सींग युक्त होकर महासमुद्र में आना, मनु का नाव की रस्सियों का सींगों में बाँधना। खींचते हुए नाव का हिमाचल पर पहुँचना। उसके ऊँचे शिखर पर नाव बाँधना। मत्स्य का अन्तर्धान होना। तप से मनु द्वारा सृष्टि रचना।

२२. धुन्धुमार उपाख्यान (अध्याय १९२ से १९५ तक)

(अ) उसी के अन्तर्गत उत्तंक उपाख्यान (अध्याय १९३ से १९४ तक)

विशेष विवरण—उत्तंक का विष्णु को प्रसन्न करने के लिए तप करना। विष्णु का वरदान देना। उत्तंक ने वर माँगा कि मेरी बुद्धि सदा धर्म तथा सत्य और इन्द्रियों के जीतने में लगी रहे और आपकी भक्ति में सदा अभ्यास रहे। विष्णु का वर देना कि इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न बृहदाश्व का पुत्र कुवलाश्व मेरे योग्य योग का आराधन करेगा। तत्पश्चात् तुम्हारे शासन में वह धुन्धुमार होगा।

(ब) उसी के अन्तर्गत मधुकैटभ वध उपाख्यान (अध्याय १९४ में)

विशेष विवरण—भगवान् अच्युत का नाग के फन से पृथ्वी को लपेट कर सोना। विष्णु की नाभि से कमल निकलना एवं कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति। मधुकैटभ का वहाँ पहुँच कर ब्रह्मा को डराना। फिर विष्णु से वर माँगना कि हम जलरहित स्थान में मरें तथा दोनों तुम्हारे पुत्र हों। विष्णु द्वारा जंघा को जलरहित देख कर, उसी पर मधुकैटभ के सिर को रख कर तेजधार वाले चक्र से काट डालना।

(स) उसी के अन्तर्गत धुन्धुवध का उपाख्यान (अध्याय १९५ में)

विशेष विवरण—मधुकैटभ का महापराक्रमी पुत्र धुन्धु हुआ। उसकी तपस्या, ब्रह्मा का प्रसन्न होना तथा वर माँगने के लिए कहना। उसका वर माँगना कि मैं दानव, गन्धर्व, यज्ञ, राक्षस और सर्पों से न मारा जाऊँ। कुवा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लाश्व और धुन्धु का भयानक युद्ध । धुन्धु को मारने से राजा कुवलाश्व का धुन्धुमार के नाम से प्रसिद्ध होना ।

२३. धर्म-व्याध उपाख्यान (अध्याय १६४ से २०६ तक)

इस उपाख्यान में कौशिक ब्राह्मण ने आत्मज्ञान और धर्म के मर्म को जानने वाले व्याध से व्याध के निवास स्थान जनकपुरी में जाकर धर्म का लक्षण पूछा, व्याध ने धर्म के प्रयोजन और अभिप्राय को समझाया । इस प्रसंग में जनकपुरी का भी वर्णन हुआ है । यद्यपि व्याध धर्म से हिंसा कार्य करता है तथापि वह धर्मवेत्ता है क्योंकि वह ब्रह्मा द्वारा निर्धारित वर्ग-व्यवस्था जाति-व्यवस्था का परिपालन करते हुए भी उससे निर्लिप्त है, निर्लिप्त करना ही कर्म का प्रयोजन है ।

२४. अग्नि-अंगिरा-स्कन्द आख्यान

इस उपाख्यान में अग्निदेवता कैसे बन गये ? महर्षि अंगिरा ने किस प्रकार अग्नि के नष्ट होने पर स्वयं अग्नि होकर यज्ञों की आहुति को देवों तक पहुँचाया क्योंकि अग्नि का मुख्य कार्य द्रुत आहुति को देवों तक पहुँचाना है ? अग्नि एक है, पर वह अनेक कर्मों में भिन्न-भिन्न अनेक कैसे प्रतीत होती ? कुमार कार्तिकेय कैसे उत्पन्न हुए ? वे कैसे अग्नि के पुत्र हुए ? गंगा और कृत्तिका ने किस तरह उत्पन्न किया ? इन प्रसंगों का वर्णन मिलता है ।

२५. रामाख्यान अध्याय (अध्याय १२८ से २७५ तक)

इस आख्यान में राम की कथा वर्णित हुई है । किस कुल में राम ने जन्म लिया ? बल और पराक्रम में वे कैसे थे ? रावण किसका पुत्र था ? राम का रावण से वैर क्यों हो गया ? आदि प्रश्न युधिष्ठिर ने मार्कण्डेय से पूछे हैं और इनका समाधान मार्कण्डेय ने किया है । इस प्रकार इस आख्यान में राम-चरित्र का सम्पूर्ण वर्णन मिलता है, जो वाल्मीकि की राम-कथा से बिल्कुल मेल खाता है ।

२६. सावित्री उपाख्यान अध्याय (अध्याय २७७ से २८३ तक)

द्रौपदी की स्थिति की तुलना में यह उपाख्यान सावित्री की कथा को व्याख्यायित करता है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उद्योगपर्व के आख्यान एवं उपाख्यान

१. नहुष एवं त्रिशिरा आख्यान (अध्याय ६ से १८ तक)

विशेष विवरण—इन्द्र के द्रोह से प्रजापति का त्रिशिरस् नामक पुत्र उत्पन्न करना। त्रिशिरस् की तपस्या। उसकी तपस्या से इन्द्र का घबरा जाना। वज्र से उसका वध करना। पुत्रवध के दु:ख से दुखी त्वष्टा प्रजापति का इन्द्रनाश के निमित्त वृत्र को उत्पन्न करना, वृत्र इन्द्र का घोर युद्ध, इन्द्र का पराभव, अन्त में विष्णु की सहायता से इन्द्र द्वारा वृत्र वध। ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र का गुप्त हो जाना। नहुष का देवराज के पद पर अभिषेक तथा उसके मन में इन्द्राणी की कामना। इन्द्राणी के द्वारा नहुष के सामने सात ऋषियों से ढोयी जाती हुई पालकी में आने की शर्त रखना। मार्ग में नहुष का अपने पैर से अगस्त्य ऋषि को छू देना। अगस्त्य ऋषि के शाप से नहुष का सर्पयोनि में जन्म लेना।

२. विरोचन-आख्यान

विदुरनीति के अन्तर्गत केशिनी की सुधन्वा से विवाह करने की इच्छा। विरोचन और सुधन्वा का प्राणों की बाजी लगा कर, विरोचन के पिता प्रह्लाद से यह पूछना कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है। प्रह्लाद का निर्णय कि सुधन्वा के पिता अंगिरस मुझसे श्रेष्ठ हैं, अत: सुधन्वा विरोचन से श्रेष्ठ है। अंत में केशिनी के निकट जाकर विरोचन का सुधन्वा के पैर धोना।

३. नरनारायण उपाख्यान (अध्याय ४)

विशेष विवरण—राजा दम्भोद्भव एवं नरनारायण ऋषियों की कथा। दम्भोद्भव का नरनारायण ऋषियों पर आक्रमण, ऋषियों के द्वारा राजा का पराभव। (काण्व द्वारा दुर्योधन को उपदेश के निदर्शन के रूप में यह उपाख्यान आया है।)

४. मातालि उपाख्यान (अध्याय ६५ से १०८ तक)

विशेष विवरण—इन्द्र सारथि मातालि का अपनी कन्या गुणकेशी के लिए वर ढूँढ़ने नागलोक जाना। भोगवती पुरी में मातालि का सुमुख को देख कर पसन्द करना। आर्यक का गरुड़ के द्वारा सुमुख की मृत्यु का समाचार कहना। मातालि का सुमुख को इन्द्र और विष्णु के पास ले जा कर दीर्घायु देने की प्रार्थना करना। इन्द्र का विष्णु के कहने से सुमुख को चिरजीवी बनाना। यह सुन कर गरुड़ का विष्णु के पास जा कर उन्हें फटकारना। विष्णु के द्वारा गरुड़ का अभिमान हरना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५. गालव-आख्यान (व्यासोपदेश के अन्तर्गत)
(अध्याय १०४ से ११७ तक)

विशेष विवरण—गालव के द्वारा विश्वामित्र की सेवा। गालव के गुरुदक्षिणा के लिए बहुत जोर देने पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र का आठ सौ एक तरफ काले कान तथा सफेद शरीर वाले घोड़े माँगना। गरुड़ की सहायता, गरुड़ की पीठ पर बैठ कर गालव की सभी दिशाओं में यात्रा। गरुड़ को अपने अपराध का दण्ड मिलना।

५. (अ) ययाति उपाख्यान (गालव आख्यान के अन्तर्गत)
(अध्याय ११८ से १२१ तक)

विशेष विवरण—गालव तथा गरुड़ का घोड़ों के लिए ययाति के पास आना। ययाति का अपनी असमर्थता दिखा कर अपनी कन्या माधवी को देना। गालव का हर्यश्व के पास आ कर आठ सौ घोड़े दे कर माधवी में चार पुत्र उत्पन्न करने के लिए कहना। हर्यश्व का दो सौ घोड़े दे कर माधवी में एक पुत्र उत्पन्न करना। इसी तरह दो सौ—दो सौ घोड़े दे कर दिवोदास तथा उशीनर का माधवी में एक-एक पुत्र उत्पन्न करना, अन्त में विश्वामित्र के द्वारा माधवी में अष्टक नामक पुत्र पैदा करना। ययाति का स्वर्गभ्रष्ट होकर पृथ्वी पर गिराना। उसके दौहित्रों द्वारा पुनरुद्धार।

६. विदुरोपाख्यान

विशेष विवरण—विदुरा नाम की एक राजपुत्री ने एक बार सिन्धुराज से पराजित विदुरा अपने सगे पुत्र की निन्दा करते हुए, उसे युद्ध के लिए प्रेरित करने तथा युद्ध में साहसी एवं पराक्रमी वनने का उपदेश किया तो धर्म को आगे रख कर अपना पराक्रम प्रकट करो अथवा मृत्यु को प्राप्त हो। कायरता-पूर्ण जीने से क्या लाभ ? माता की आज्ञा सुन कर संजय का समस्त कार्यों को पूर्ण करना।

७. शिखण्डी वृत्तान्त (अम्बा का आख्यान)
(अध्याय १७१ से लेकर १९३ तक)

विशेष विवरण—भीष्म द्वारा शिखण्डी के सामने अपने शस्त्र-त्याग का कारण वताना। विचित्र वीर्य के लिए भीष्म द्वारा काशिराज की तीन कन्या अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का अपहरण। भीष्म से अनुमति पा कर अम्बा का शाल्वपति के पास जाना। शाल्वपति के द्वारा अम्बा का ठुकरा दिया जाना। अम्बा का अपने इस अपमान के लिए भीष्म को दोषी बता कर उन्हें दण्ड देने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निश्चय करना। अम्बा के कहने पर परशुराम का भीष्म को दण्ड देने का निश्चय, परशुराम भीष्म का कुरुक्षेत्र में युद्ध, अम्बा का भीष्मवध के लिए स्वयं तपस्या करने के निश्चय पर भीष्म की माता गंगा का अम्बा को आधे भाग से कुटिला नदी हो जाने का शाप। अम्बा का दूसरा शरीर धारण करके, भीष्म वध की प्रतिज्ञा करके अग्नि-प्रवेश आदि।

उत्तरार्द्ध में सन्तानहीन द्रुपद द्वारा शंकर की आराधना। कन्या-प्राप्ति का वरदान मिलना। पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना पर कन्या का पुत्र बन जाना। द्रुपद का अपनी कन्या का हिरण्यवर्मा की पुत्री से विवाह करना। हिरण्यवर्मा का क्रुद्ध होकर द्रुपद पर आक्रमण। शिखण्डी का वन में जाकर मरने का निश्चय करना। वन में स्थूणाकर्ण का शिखण्डी का अपना पुरुषत्व देकर स्वयं उसका स्त्रीत्व ग्रहण करना। प्रसन्न हुए शिखण्डी का वापिस लौटना। उसी समय यक्षराज कुबेर का स्थूणाकर्ण के पास आगमन। स्थूणाकर्ण के वृन्तान्त को जान कर कुबेर का उसे शिखण्डी के मरने तक स्वरूप में मरने का शाप देना। पुरुषत्व प्राप्त शिखण्डी की हिरण्यवर्मा के द्वारा परीक्षा तथा उनका प्रसन्न होना।

भीष्मपर्व के आख्यान-उपाख्यान

जम्बू खण्डनिर्माण पर्व

इसमें युद्ध के समय में अथवा युद्ध के प्रभाव से प्रभावित होने वाले संसार का चित्र खींचा गया है। युद्धकालीन भयावह स्थितियाँ अंकित हुई हैं। चतुर्थ अध्याय में यह कहा गया है कि काल ही जगत् का संहार करता है, लोकों को उत्पन्न करता है। संसार में कोई भी वस्तु चिरस्थायी नहीं है। कुरुक्षेत्र में आने वाले जीवों, उनके जनपदों, देशों, नगरों, हेमकूट निषध आदि पर्वतों, वनों, नदियों और हेमवतवर्ष तथा हरिवर्ष के साथ ही भारतवर्ष तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल का वर्णन है। □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शान्ति पर्व के इतिहास

शीर्षक	सन्दर्भ	विवरण
१. ऐल-कश्यप संवाद	शान्ति/राजधर्म/७४	ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग के सहयोग से राज्य रक्षित होता है।
२. मुचुकुन्द और राजा वैश्रवण संवाद	शान्ति/राजधर्म/७५	मुचुकुन्द और यक्षराज वैश्रवण के युद्ध का वर्णन है।
३. कैकयराज-राक्षस संवाद	शान्ति/राजधर्म/७८	राज्य में ब्राह्मणों की स्थिति को बताया गया है।
४. वासुदेव देवर्षि नारद संवाद	शान्ति/राजधर्म/८२	किससे मित्रता उपयुक्त होती है, यह बात स्पष्ट की गयी है।
५. कालकवृक्षीय मुनि और कौसल्य-वृत्तान्त	शान्ति/राजधर्म/८३	राजा को किस प्रकार राज-कोष व प्रजा के धन की रक्षा करनी चाहिए, यह इंगित किया गया है।
६. बृहस्पति-शक्र (इन्द्र) संवाद	शान्ति/राजधर्म/८५	प्रजा-संग्रह-वृत्ति को स्पष्ट किया गया है।
७. वामदेव और वसुमना कथा	शान्ति/राजधर्म/९३	धर्मात्मा राजा का आचरण बताया गया है।
८. अम्बरीष और इंद्र संवाद	शान्ति/राजधर्म/९९	युद्ध में मारे गए वीर पुरुष कहाँ जन्म लेते हैं, यह अंकित किया गया है।
९. राजा प्रतर्दन और मिथिलापति जनक युद्ध	शान्ति/राजधर्म/१००	प्रतर्दन और जनक के युद्ध का कारण बताया गया है।
१०. बृहस्पति-इन्द्र संवाद	शान्ति/राजधर्म/१०४	शत्रु के साथ प्रारम्भ में कैसा व्यवहार किया जाय, यह बताया गया है।
११. क्षेमदर्शीय राजा का इतिहास	शान्ति/राजधर्म/१०५	धर्मात्मा राजा सेवकों से प्रबाधित कोष और दण्ड से च्युत तथा अर्थलाभ में असमर्थ होकर सुख की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

		अभिलाषा के लिए कैसा आचरण करें, यह निर्दशित किया गया है।
१२. व्याघ्र-गोम संवाद	शान्ति/राजधर्म/११२	अप्रिय प्रिय जैसे, तथा अप्रिय कैसे लगते हैं, वस्तुतः ऐसे पुरुषों को कैसा माना जाय, यह निर्दशित किया गया है।
१३. सरिता-सागर संवाद	शान्ति/राजधर्म/११४	दुर्बल राजा को बलवान् राजा के सामने कैसे रहना चाहिए, इसका उदाहरण दिया गया है।
१४. सज्जन-आचरण	शान्ति/राजधर्म/११७	सज्जनों से आचरित लोक समाज में सदा परम प्रमाण रूप में लिया जाने वाला होता है, इसका निदर्शन।
१५. वसुहोम-कथा	शान्ति/राजधर्म/१२२	अंगदेश में वसुहोम राजा कैसा था, उसकी कथा।
१६. कामन्द व अंगारिष्ठ-संवाद	शान्ति/राजधर्म/१२३	धर्म-अर्थ और काम के बीच सन्तुलन का निदर्शन।
१७. नारद-प्रोक्त शील	शान्ति/राजधर्म/१२४	शीलधर्म का निदर्शन।
१८. सुमित्र-ऋषभ संवाद	शान्ति/राजधर्म/१२५	आशा के अभाव का निदर्शन।
१९. गौतम-यम संवाद	शान्ति/राजधर्म/१२७	धर्म की निदर्शन-कथा।
२०. मर्यादा	शान्ति/आपद्धर्म/१३३	मनुष्य डाकू होकर भी मर्यादा युक्त होने पर नरकगामी नहीं होता, यह व्याख्यायित किया गया है।
२१. कार्य-अकार्य आख्यान	शान्ति/आपद्धर्म/१३५	
२२. भरद्वाज-राजा शत्रुतप-संवाद	शान्ति/आपद्धर्म/१३८	आपत्काल नीति वर्णित है।
२३. विश्वामित्र-चंडाल संवाद	शान्ति/आपद्धर्म/१३९	आपत्काल में राजा का कर्त्तव्य कैसा हो, इसका निदर्शन।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२४. जनमेजय-शुकनन्दन कथा	शान्ति/आपद्धर्म/१४६	राजा जनमेजय द्वारा शुनकनन्दन ऋषि को धर्म की वृद्धि करने वाली सेवा का वर्णन है।
२५. सत्यवान् की गाथा	शान्ति/आपद्धर्म/१४८	सत्यवान् का त्याग वृत्तान्त वर्णित है।
२६. शल्मलि-पवन संवाद	शान्ति/आपद्धर्म/१५०	नारद की शल्मलि वृक्ष से वार्ता है।
२७. सेनजित्-कथा	शान्ति/मोक्षधर्म/१६८	ब्राह्मण और राजा सेनजित् का वृत्तान्त वर्णित है।
२८. पिता-पुत्र संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/१६९	सब प्राणियों के क्षय करने वाले समय में किस प्रकार कल्याण सम्भव है, इसका निदर्शन।
२९. शम्याक कथित इतिहास	शान्ति/मोक्षधर्म/१७०	धनवान् और निर्धनों का सुख-दुःख कैसा और किस प्रकार का होता है, इसका निरूपण।
३०. मैंकि कथित इतिहास	शान्ति/मोक्षधर्म/१७१	मैंकि की कथा के माध्यम से सुख का स्वरूप निरूपण।
३१. प्रह्लाद और मुनि अजगर संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/१७२	मनुष्य का पृथ्वी पर शोक-रहित विचरण करने का तथा उत्तम गति प्राप्त करने का उपाय बताया गया है।
३२. इन्द्र-काश्यप संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/१७३	बुद्धि ही प्रतिष्ठा प्राप्त कराने का सर्वश्रेष्ठ विषय है।
३३. भारद्वाज के प्रश्न के उत्तर में भृगु मुनि के द्वारा कथित इतिहास	शान्ति/मोक्षधर्म/१७५	सृष्टि, विलय तथा जीवात्मा का स्वरूप बताया गया है।
३४. यम, काल तथा ब्राह्मण के संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/१९०	जप, जाप्य तथा जापक से सम्बन्धित चर्चा।
३५. राजा इक्ष्वाकु, सूर्यपुत्र यम और ब्राह्मणों के विवाद से सम्बन्धित इतिहास	शान्ति/मोक्षधर्म/१९२	काल और मृत्यु से सम्बन्धित घटना तथा वार्ता का विवेचन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३६. मनु और बृहस्पति संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/१९४	नियमों का प्रयोजन तथा परमात्मा के जानने का प्रकार बताया गया है।
३७. गुरु-शिष्य संवाद इतिहास	शान्ति/मोक्षधर्म/२०३	मोक्ष विषय का परम स्रोत वर्णित है।
३८. जनक की कथा	शान्ति/मोक्षधर्म/२११	लोक व्यवहार और सुख-मय मोक्ष में समन्वय कैसे हो, इसका निदर्शन।
३९. प्रह्लाद-इन्द्र संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२१५	मनुष्य शुभाशुभ कर्मों का कर्त्ता होता है अथवा नहीं, यह बात यहाँ व्याख्यायित हुई है।
४०. विरोचनपुत्र बलि—देवराज इन्द्र-संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२१६	कालदण्ड से विपद्ग्रस्त तथा श्री-भ्रष्ट राजा की चर्या की वात कही गयी है।
४१. इन्द्र-नमुचि संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२१९	श्रीहीन तथा शत्रुओं के वशीभूत होने पर शोक नहीं करना चाहिए, इसका उपदेश।
४२. बलि-इन्द्र संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२२०	धैर्य ही आपत्ति में सबसे वड़ा सहायक होता है, इसका निदर्शन।
४३. श्री-शक्र संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२२१	मन ही मनुष्यों की भारी उन्नति तथा अवनति को प्रकाशित करता है, इसका निदर्शन।
४४. असतिदेवल जैगीषव्य संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२२२	श्रेष्ठ अविनाशी और ब्रह्म-पद को प्राप्त करने के लिए कैसे चरित्र, आचार-विद्या और आश्रय से युक्त होना चाहिए, इसका निदर्शन।
४५. तुलाधार-जाजलि वार्ता	शान्ति/मोक्षधर्म/२५३	धर्म के विषय में निदर्शन।
४६. राजा विचरन्नु कथित इतिहास	शान्ति/मोक्षधर्म/२५७	प्रजा कल्याण की बात कही गयी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४७. चिरकारी-वृत्तान्त	शान्ति/मोक्षधर्म/२५८	अंगिरावंश में चिरकारी के किए हुए कर्म के कारण हुई घटना से सम्बन्धित है।
४८. राजा सत्यवान् द्युमत्सेन संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२५९	राजा को किस प्रकार प्रजा की रक्षा का दण्ड विधान करना चाहिए, इसका निरूपण।
४९. कपिल-गौ संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२६०	गार्हस्थ्य और योगधर्म का व्याख्यान किया गया है।
५०. देवल असित नारद संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२६७	जीवोत्पत्ति और विनाश का कारण बतलाया गया है।
५१. जिज्ञासु माण्डव्य विदेहराज-संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२६८	तृष्णा से निवृत्ति होने का उपाय बताया गया है।
५२. नारद समङ्ग संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२७५	शोक, दुःख तथा मृत्यु के भय से छुटकारे का उपाय बताया गया है।
५३. गालवदेवर्षि नारद संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/२७६	कल्याण के उपाय बताए गये हैं।
५४. पंचशिख-जनक संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/३०७	जरा-मृत्यु से छूटने का उपाय बताया गया है।
५५. जनक-सुलभा संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/३०८	मोक्ष का परम तत्त्व व आत्मा के स्वरूप को बतलाया गया है।
५६. नारद-नारायण संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/३२१	देवताओं का देवता, पितरों का पिता, आराध्यों का आराध्य, और उससे भी श्रेष्ठ कौन है इसका निरूपण।
५७. ऋषि-वृन्द-देवता संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/३२५	वसु भगवान् के परम भक्त राजा उपरिचर स्वर्ग से पृथ्वी पर क्यों आये, इसकी कथा।
५८. ब्रह्मा-त्र्यम्बक संवाद	शान्ति/मोक्षधर्म/३३८	पुरुष एक है या अनेक तथा श्रेष्ठ कौन है, उसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

		उत्पत्ति स्थान क्या है, इसका निरूपण।

अनुशासन पर्व के इतिहास

१. काल व्याध और सर्प सहित मृत्यु और गौतमी-संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१	कर्मों का कारण सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है तथा इसका प्रत्यक्ष मन से नहीं होता, इसका निरूपण।
२. इतिहास	अनुशा०/दानधर्म/२	गृहस्थी मनुष्य किस प्रकार धर्म की सहायता से मृत्यु को पराजित करता है, इसका निदर्शन।
३. वसिष्ठ-ब्राह्मण संवाद	अनुशा०/दानधर्म/६	दैव (भाग्य) और पुरुषार्थ में कौन-सा श्रेष्ठ है, इसका निरूपण।
४. शृगाल-वानर संवाद	अनुशा०/दानधर्म/९	दान की प्रतिज्ञा करने पर दान न देने पर होने वाली स्थिति बताई गई है।
५. भंगाश्वन राजा और इन्द्र की शत्रुता से सम्बन्धित इतिहास	अनुशा०/दानधर्म/१२	स्त्री और पुरुष के परस्पर संयोग में वैषयिक सुख किसे अधिक होता है, इसका उत्तर दिया गया है।
६. अष्टावक्र दिक् संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१९	पाणिग्रहण के समय स्त्री-पुरुष-सहधर्म क्या है, यह आर्ष धर्म है या प्राजापत्य या आसुर,इसका समाधान।
७. शिलोञ्च वृत्ति सिद्ध संवाद	अनुशा०/दानधर्म/२७	कौन-सा देश, कौन-सा जनपद, कौन-सा आश्रम, कौन-सा पर्वत, कौन-सी नदियाँ पुण्य प्रभाव में श्रेष्ठ हैं, यह समझाया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८. भीष्म प्रोक्त भागीरथी स्तव-संयुक्त इतिहास	अनुशा०/दानधर्म/२७	
९. मतंग-गर्दभ संवाद	अनुशा०/दानधर्म/२८	जीव अनेक योनियों में जन्म लेने के बाद कहीं किसी जन्म में जाकर ब्राह्मण होता,है यह निर्दशित किया गया है।
१०. नारद-वासुदेव संवाद	अनुशा०/दानधर्म/३२	मनुष्यों में कौन पूज्य और नमस्कार करने योग्य है, इसका समाधान।
११. श्रीकृष्ण-पृथ्वी संवाद	अनुशा०/दानधर्म/३४	इस लोक में जो कुछ कहा-सुना, देखा जाता है, वह सब लकड़ी के बीच में छिपी अग्नि की भाँति ब्राह्मणों में विद्यमान है, इसका निदर्शन।
१२. शक्र-शम्बर संवाद	अनुशा०/दानधर्म/३६	कौन व्यवहार ब्राह्मण जाति के लोगों से श्रेष्ठ बनाता है, इसका समाधान।
१३. नारद-अप्सरा पंचचूड़ा संवाद	अनुशा०/दानधर्म/३८	नारी स्वभाव क्या है तथा नारियाँ सब दोषों की क्या मूल हैं, इसका उत्तर।
१४. च्यवन-कुशिक संवाद	अनुशा०/दानधर्म/५२	पुत्रों को छोड़कर प्रपौत्रों में विजातीयता का दोष उत्पन्न कैसे होता है, इसका उत्तर।
१५. बृहस्पति-इन्द्र संवाद	अनुशा०/दानधर्म/६१	यह पृथ्वी ही जगत् की माता-पिता है और इसके समान दूसरा कोई नहीं है, इसका निरूपण।
१६. देवकी नारद संवाद	अनुशा०/दानधर्म/६३	किस नक्षत्र में किस वस्तु का दान करना चाहिए, इसका विवरण।
१७. ब्राह्मण यम संवाद	अनुशा०/दानधर्म/६७	तिल और दीपदान क्या है अन्न और वस्त्रदान कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

		होता है, इसका समाधान ।
१८. उद्दालक नाचिकेत संवाद	अनुशा०/दानधर्म/७०	गौदान से फल प्राप्ति का विवरण ।
१९. इन्द्र-ब्रह्मा संवाद	अनुशा०/दानधर्म/७१	गौदान करने वाले मनुष्य किन लोकों में रहते हैं, इसका विवरण ।
२०. गोभि नृप लक्ष्मी संवाद	अनुशा०/दानधर्म/८१	क्या गायों के गोवर में लक्ष्मी का निवास है ? इसका उत्तर ।
२१. ब्रह्मा-इन्द्र संवाद	अनुशा०/दानधर्म/८२	गौओं से बढ़कर इस लोक और परलोक में कुछ भी नहीं है, ये उभयत्र परम तेजस्वरूप कही गयी हैं ।
२२. जमदग्नि-पुत्र परशुराम कथा	अनुशा०/दानधर्म/८३	आयुष्य प्राप्ति का उपाय बतलाया गया है ।
२३. वृषादर्भि-सप्तर्षि संवाद	अनुशा०/दानधर्म/९४	दान देने वाले और लेने वाले की क्या विशेषता होती है, इसका निरूपण ।
२४. इतिहास	अनुशा०/दानधर्म/९६	तीर्थयात्रा के समय शपथ ले या न ले, इसका समाधान ।
२५. सूर्य जमदग्नि संवाद	अनुशा०/दानधर्म/९७	अच्छे दान का प्रकार तथा किस प्रकार यह पुण्य-प्रद है, इसका निरूपण ।
२६. श्रीकृष्ण पृथ्वी संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१००	गार्हस्थ्य-धर्म का वर्णन किया गया है तथा किस कारण मनुष्य इस लोक में वृद्धि पाता है, इसका निरूपण भी ।
२७. प्रजापति मनु सुवर्ण संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१०१	दीपदान नामक कर्म की विधि उत्पत्ति और फल क्या है, इसका विवरण ।
२८. भृगु-नहुष संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१०२	गृहस्थ किस कारण बलि दें, इसका उत्तर ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२९. चाण्डाल क्षत्रिय वंधु-संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१०४	जो ब्राह्मण का धन हरते हैं, वे किस लोक में जाते हैं, इसका उत्तर।
३०. इन्द्र गौतम मुनि संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१०५	कैसे-कैसे कर्म करने वाले मनुष्य किन-किन लोगों में जाते हैं, इसका उत्तर।
३१. ब्रह्मा भागीरथ संवाद इतिहास	अनुशा०/दानधर्म/१०६	तपस्या से उत्कृष्ट दूसरा कोई साधन नहीं है, इसका निरूपण।
३२. मैत्रेय-श्रीकृष्ण-द्वैपायन संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१२१	विद्या, तपस्या और दान में से श्रेष्ठ क्या है ? इसका उत्तर।
३३. ब्राह्मण-मोक्ष-कथा	अनुशा०/दानधर्म/१२५	वन में राक्षस के द्वारा पकड़े जाने पर ब्राह्मण कैसे छूटा, इसकी कहानी।
३४. पवन-अर्जुन संवाद	अनुशा०/दानधर्म/१३७	किस प्रकार के फल तथा कर्मोदय को देख कर ब्राह्मणों की पूजा की जाती है, इसका उत्तर।

□□

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon